Fortnightly per copy Rs. 4/- only

ओ३म्

03rd December 2017

आर्य जीवन

आर्य जीवन

संस्कृति संरक्षण व सामाजिक परिवर्तन का संकल्प

हिन्दी-तेलुगु द्विभाषी पक्ष पत्रिका

Date of Publication 2nd & 17th of every Month, Date of posting 3rd and 18th of every month

सार्वभौमिक मान्यता के रूप में वेद सम्मेलन सफल हो

स्वामि अग्निवेश जी के नेतृत्व में दिल्ली के इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र में दिसम्बर के १५-१७ तक विश्व वेद सम्मेलन का आयोजन हो रहा है। प्राप्त सूचना के अनुसार इस सम्मेलन में भारत व विश्व के अन्य देशों से ख्याति प्राप्त महानुभाव भाग ले रहे हैं। यह अच्छी बात है कि विश्व स्तर पर वेद की सार्वभौमिकता को स्थापित किया जाए। वेद की सार्वभौमिकता को स्थापित करते समय यह अनिवार्य हो जाता है कि वेद एक वर्ग के लिए ही या एक देश के लिए ही या एक देश से सम्बधित किसी तथाकथित धर्म के लिए ही सीमित नहीं है। वेद सार्वभौमिक, सार्वकालिक, सार्वजनीन है तो बात को भी ग्लोबल तरीके से ही सिद्ध करनी होगी। आर्य समाज से सम्बन्धित सभी, वेद के विद्वानों को या वेद की मौलिक बातों को जानने वाले सभी महानुभावों को पता है कि स्वामी दयानन्द ने वेद को किसी की बपौति के रूप में, सीमित दायरे में नहीं बांधा हैं और न ही भजन-कीर्तन के दायरे में सीमित किया है। अतः जो भी वहां पर उपस्थित होंगे, उन्हें चाहिए कि वेद को मात्र हिन्दुओं के दायरे में न बांधे। यह ठीक है कि अधिकतर हिन्दु ही वेद को मानते है पर वह हिन्दुओं के लिए ही नहीं है। वेद का ज्ञान और उपयोग समस्त मानव समूह के लिए है और मानव के माध्यम से समस्त प्राणि कोटी के लिए उपयोग में आने के लिए है। वेद मात्र आत्मा से परमात्मा से सम्बन्धित ज्ञान को प्राप्त कर उसका साक्षात्कार करने तक ही सीमित नहीं बल्कि प्रकृति, प्रकृतिजनित समस्त पदार्थों से सम्बन्धित ज्ञान-विज्ञान की जानकारी प्राप्त कर उसका उपयोग मानव तथा प्राणि कोटी के हित के लिए किया जाए। इस सन्दर्भ में वेद को हिन्दूओं के तथाकथित धर्म ग्रन्थ की आवधारणा को तथा पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन की अवधारणा को भी तोड़ना है। अगर हैसा कर सकें तो ही विश्व के सन्दर्भ में वैश्विक स्तर पर परमात्मा के ज्ञान के रूप में सर्वमानव के हित के लिए तथा समस्त प्राणि-कोटी के हित के लिए वेद को स्थापित किया जा सकता है। वेद को मात्र एकाडेमिक विषय के रूप में ही प्रतिपादित करने के बजाय दुनिया जिन समस्याओं से जूझ रही है उन सभी समस्याओं के हल के लिए एक वैकल्पिक व्यवस्था और विचार देने का प्रयास करना चाहिए।

भारत सरकार ही नहीं विश्व की सभी सरकारें आज जिस विकास के मॉडल को लेकर चल रहीं है वह मानव तथा पाणी-कोटी के जीवन को संकट में डाल दिया है। इसीलिए आज जल संकट है, पर्यावरण संकट है, नैतिकता और स्वास्थ्य संकट है। गरीबी तथा ऊँच-नीच का संकट है। खासकर ग्लोबल वार्मिंग का संकट है। वायु प्रदूषण बहुत बड़ी समस्या बनने जा रही है और पर्यावरण में बदलाव के कारण पीने के पानी से लेकर जल, जमीन, जंगल का संकट पैदा कर रही है। ऐसी स्थिति में आज के विकास के मॉडल का वैकल्पिक स्वरूप क्या हो, इसे वेद आधारित मॉडल के रूप में प्रस्तुत करने की जरूरत है। अन्यथा अन्य सम्प्रदायों की तरह वेद भी एक सम्प्रदाय सूचक बनकर रह जाएगा और जो लोग वेद को सत्य ज्ञान का मूल मानते है या ज्ञान

हवन में होने वाली दहन क्रिया

वैज्ञानिक विश्लेषण

-डॉ. रामप्रकाश

कुछ लोगों का विचार है कि उत्तम पदार्थों को खाने की अपेक्षा अग्नि में जलाकर नष्ट कर देना उचित नहीं। महर्षि दयानन्द ने इस शंका का समाधान करते हुए लिखा है, "जो तुम पदार्थविद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते, क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता।"[1] यह उत्तर स्पष्टतया वैज्ञानिक है। जैसे अभाव से भाव की उत्पत्ति सम्भव नहीं वैसे ही भाव को भी अभाव में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। "शास्त्र में लिखा है कि **'नासत आत्मलाभः, न सत आत्महानम्'**, अर्थात् जो नहीं है वह कभी हो नहीं सकता और जो है वही आगे होता है। ....अस्ति से अस्ति होती है। नास्ति से किसी प्रकार नहीं हो सकती।"[2] ऋषि दयानन्द मानते हैं कि प्रकृति अनादि (जिसका अन्त न हो, अर्थात् जिसे नष्ट न किया जा सके) है। इसका समर्थन आधुनिक विज्ञान ने द्रव्य अविनाश नियम (Law of Conservation of Mass) के द्वारा किया है। इस नियम के अनुसार "किसी भी रासायनिक प्रतिक्रिया में भाग लेने वाले पदार्थों के भार का योग अपरिवर्तित रहता है।"[3]

अग्नि में आहुति देने से हानि तो कोई नहीं, लाभ अवश्य है। जब अग्नि में कोई वस्तु डाली जाती है तो अग्नि उसके स्थूलरूप को तोड़कर सूक्ष्म बना देती है। **(यह वाक्य विचारणीय है)** यजुर्वेद (१/८) में अग्नि को **धूरसि** कहकर इसी सत्य को प्रतिपादित किया गया है। **धूरसि** का अर्थ करते हुए महर्षि दयानन्द ने लिखा है, "भौतिक अग्नि सब पदार्थों का छेदन और अन्धकार का नाश करने वाला है।"[4] "भौतिक अग्नि इसलिए है कि वह उन होम-द्रव्यों को परमाणुरूप करके **(परमाणुरूप शब्द विचारणीय है)** वायु और जल के साथ मिलकर शुद्ध कर दे।" यह है भी दैनिक अनुभव की बात। एक मन दाल में एक ग्राम हींग का कुछ प्रभाव नहीं होता; परन्तु वही हींग भूनाकर छौंक लगाने से सारी दाल को सुगन्धित कर देता है। मिर्च खाने से केवल खाने वाले व्यक्ति पर ही उसका प्रभाव पड़ता है, किन्तु इसे भली प्रकार पीसकर उड़ा देने से आस-पास बैठे व्यक्ति खाँसने लगते हैं। उसी मिर्च को जलाने से बहुत लोगों पर उसकी तीक्ष्ण गन्ध का प्रभाव होता है, **(यह वाक्य विचारणीय है)** अतः अग्नि में डाल देने से पदार्थ हल्का होकर शीघ्र सारी वायु में फैल जाता है। **(यह वाक्य विचारणीय है)** उसकी भेदक शक्ति बढ़ जाती है। यह तथ्य ग्राहम् के गैसीय व्यापनशीलता के नियम (Grahm's Law of Diffusion of Gases : at constant temperature and pressure the rate of diffusion of various gases vary inversely as the square root of their densities or molecular weights) का आधार है। इस नियम के अनुसार "निश्चित ताप और दबाव पर गैसों की व्यापन गतियाँ उनके घनत्वों के वर्गमूल की विपरीत अनुपाती होती हैं।"[5] अतः जो गैस जितनी हल्की होगी, वह उतनी ही शीघ्र वायु में मिल सकेगी। ऐसा ही यजुर्वेद (६/१६) में कहा है-

स्वाहाकृतेऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम्।

"यज्ञ में स्वाहापूर्वक आहुति देने से वायु ऊपर आकाश में जावे।"

प्राचीन भारतीयों को अर्द्ध-शिक्षित मानने वालों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान तथा अंग्रेजी पढ़े बिना भी ऋषि दयानन्द ने लिखा है, "अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके, फैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है।" ऋषि आगे लिखते हैं, "सुगन्ध (केसर, कस्तूरी, पुष्प, इत्र आदि की सुगन्ध) का वह सामर्थ्य नहीं कि गृहस्थ वायु को बाहर निकालकर शुद्ध वायु का प्रवेश करा सके; क्योंकि उसमें भेदक शक्ति नहीं है; और अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न-भिन्न और हल्का करके बाहर निकालकर पवित्र वायु का प्रवेश करा देती है।"[1] "अतर और पुष्प आदि का सुगन्ध तो उसी दुर्गन्ध वायु में मिलकर रहता है, उसमें छेदन करके बाहर नहीं निकाल सकता, और न वह ऊपर चढ़ सकता है, क्योंकि उसमें हल्कापन नहीं होता। उसके उसी अवकाश में रहने से बाहर का शुद्ध वायु उस ठिकाने में जा भी नहीं सकता, क्योंकि खाली जगह के बिना दूसरे का प्रवेश नहीं हो सकता।"[6] (displacement) अतः स्पष्ट है कि यदि ऋषियों ने वायुशुद्धि के लिए अग्निहोत्र को अपनाया है तो किसी अन्धविश्वास के कारण नहीं, अपितु वैज्ञानिक आधार पर।

अग्निहोत्र में किन-किन रासायनिक परिवर्तनों के द्वारा क्या-क्या पदार्थ उत्पन्न होते हैं- इसका निश्चय करना कठिन है, क्योंकि-

(क) यज्ञकुण्ड में सर्वदा तापांश समान नहीं रहता। तापांश भिन्नता के कारण एक ही हव्य-द्रव्य भिन्न-भिन्न पदार्थ बना सकता है।

(ख) यह भी सम्भव है कि रासायनिक क्रिया पूर्ण होने से पूर्व ही जो पदार्थ बने हैं वे आपस में मिलकर कोई अन्य पदार्थ बना लें या उड़कर वायु में मिल जाएँ।

(ग) यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक ऑक्सीकरण सदा पूर्ण हो ही जाए, क्योंकि वायु की मात्रा न्यूनाधिक होती रहती है।

फिर भी यज्ञ के द्वारा उत्पन्न होने वाले पदार्थों का अनुमान तो लगाया ही जा सकता है। हाँ, यह निश्चय करना कठिन है कि कितनी सामग्री डालने से कौनसा पदार्थ कितनी मात्रा में उत्पन्न होगा।

अब हवा में डाले जाने वाले पदार्थों के जलने पर उत्पन्न होने वाली गैसों पर विचार आरम्भ करते हैं-

कपूर कपूर आसानी से जलता है, अतः यज्ञाग्नि कपूर जलाकर प्रज्वलित की जाती है। यह जलते समय धुआँ उत्पन्न करता है। इसका कुछ भाग बिना किसी रासायनिक परिवर्तन के उड़ जाता है (sublimate) जो वायु में मिलकर उत्तम सुगन्धि उत्पन्न करता है। वस्तुतः यह दुर्गन्ध को नष्ट नहीं कर पाता, अपितु उसे अपनी सुगन्ध से मात्र छिपा लेता है। कपूर के शेष भाग का एक तैल बन जाता है जिसमें पाइनीन, डाइपैण्टीन, सीनिओल, युजिनॉल, सैफ्रोल और टर्पिनिऑल आदि होते हैं।

लकड़ी अग्नि होत्र में जो द्रव्य डाले जाते हैं उनका लगभग ७५ प्रतिशत भाग लकड़ी होती है। इसका मुख्य प्रयोजन अग्नि प्रज्वलित

रखना है, अतः **आवश्यकता से अधिक समिधाएँ डालने का विशेष लाभ नहीं है ।** इसके जलने से लगभग ५००° सेल्सियस तापांश हो जाता है ।

लकड़ी के मुख्य भाग सेलुलोस तथा लिग्नोसेलुलोस में लगभग ४७.६२ प्रतिशत हाइड्रोजन, २८.५७ प्रतिशत कार्बन तथा २३.८१ प्रतिशत ऑक्सीजन होती है । लकड़ी के जलने का अभिप्राय सेलुलोस तथा लिग्नोसेलुलोस का ऑक्सीकृत हो जाना है । फिर धीरे-धीरे जो हाइड्रोकार्बन बनती है, वे ४००-६००° सेल्सियस के बीच जल जाती हैं । सेलुलोस तथा लिग्नोसेलुलोस ऑक्सीजन के साथ मिलकर कार्बन डाइऑक्साइड तथा पानी बनाते हैं (द्रष्टव्य समीकरण १)* । पानी भाप बनकर उड़ जाता है तथा कार्बन डाइऑक्साइड वायु में मिल जाती है ।

यदि वायु का प्रवेश कम हो तो कुछ कार्बन मोनोऑक्साइड गैस (समीकरण २) तथा कार्बन की धूल (समीकरण ३) भी बन सकती है, परन्तु यज्ञवेदी खुला स्थान होने से वायु भली प्रकार आती रहती है; अतः कार्बन मोनोऑक्साइड बननी भी नहीं चाहिए, क्योंकि यह विषैली गैस है । हाँ, कार्बनधूलि हानिकारक नहीं है; अपितु यह वर्षा में सहायक है ।

यज्ञकुण्ड की बनावट, समिधाओं की लम्बाई तथा उनके रखने की विधि, तापांश और वायु-मात्रा निर्धारित कर देती है कि हवन के समय लकड़ी की आसवन-क्रिया (distillation) हो जाने की पूरी सम्भावना है आसवन-क्रिया के कारण अनेक पदार्थ पैदा होते हैं । फिर ये पदार्थ आपस में मिलकर कई अन्य पदार्थ बना लेते हैं । इस प्रकार समस्त क्रिया पेचीदा बन जाती है और उत्पन्न गैसों का सही अनुमान लगाना कठिन हो जाता है । यज्ञ में तो यह कार्य और भी कठिन है, क्योंकि वायु और गर्मी की मात्रा न्यूनाधिक होती रहने से परिस्थितियाँ भी निश्चित नहीं रह पातीं ।

हाले और पामर[5] का विचार है कि आसवन-क्रिया के आरम्भ होते ही लकड़ी सूखना प्रारम्भ कर देती है । इस समय अधिक मात्रा में पानी तथा थोड़ा-सा ऐसीटिक ऐसिड और मैथेनॉल भी बनता है । उसके पश्चात् कई गैसें उत्पन्न होती रहती हैं ।

पाश्चात्य वैज्ञानिक बुर्ग[6] ने लकड़ी की आसवन-क्रिया के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । वह इस प्रकार पैदा होने वाली गैसों में एक सौ से भी अधिक पदार्थों की पहचान करने में सफल रहे हैं । उनके अनुसार इस क्रिया के कारण कई हाईड्रोकार्बन (मेथैन, वैञ्जीन आदि), ऐल्डिहाइड (**फार्मेल्डीहाइड,** ऐसीटऐल्डिहाइड, फरफ्युरल, प्रोपिओन ऐल्डिहाइड आदि), कीटोन (ऐसीटोन, मिथैल इथैल कीटोन आदि), अम्ल (फार्मिक अम्ल, ऐसीटिक अम्ल, प्रोपिऑनिक अम्ल एवं नार्मल कैप्रोइक अम्ल आदि), एल्कोहॉल (मिथैल एल्कोहॉल, इथैल एल्कोहॉल आदि), फीनोल, कार्बनडाइऑक्साइड तथा पानी उत्पन्न होते हैं ।

कौन-सा पदार्थ कितनी मात्रा में उत्पन्न होता है, यह लकड़ी की बनावट, तापांश, दूसरे पदार्थों की विद्यमानता आदि पर निर्भर करता है । उत्पन्न द्रव्यों में एल्कोहॉल तथा कार्बनिक अम्ल भी हैं, अतः वे परस्पर मिलकर यस्टर बना लेंगे ।

यह अनुमान लगाना कठिन है कि पूर्व उल्लिखित पदार्थ किन-किन रासायनिक परिवर्तनों के कारण बनते हैं, परन्तु **क्लेसन** के विचारानुसार आसवन-क्रिया के समय जो ऐसीटिक ऐसिड बनता है, वही टूटकर ऐसीटोन बना देता है तथा अन्य कीटोनज़ भी इसी प्रकार अपनी संगत के अम्लों से ही उत्पन्न होती हैं (समीकरण ४) । यहाँ हाइड्रोजन भी बनती है, किन्तु आसवन-क्रिया से उत्पन्न होने वाले पदार्थों में क्लोसन व उनके सहयोगी हाइड्रोजन गैस प्राप्त नहीं कर सके थे; यद्यपि कुछ अन्य वैज्ञानिकों ने इस गैस को भी विद्यमान पाया है ।

यहाँ जो हाइड्रोकार्बन उत्पन्न हुई हैं, उनमें भी कई परिवर्तन होते रहते है । उदाहरणार्थ मिथेन पदार्थ से ऐसिटिलीन तथा हाइड्रोजन आदि बन सकते हैं (समीकरण ५) । यह हाइड्रोजन अन्य पदार्थों के साथ मिलकर नए पदार्थ बना सकती है तथा वायु में मिल सकती है ।

रालयुक्त लकड़ी के जलने तथा आसवित हो जाने पर मुख्यतः फार्मेल्डीहाइड की उत्पत्ति होती है, किन्तु कुछ मात्रा में टर्पिनिऑल, टर्पिन, सीनिओल तथा अन्य उड़नशील पदार्थ भी बनते हैं ।[10]

लकड़ी के जलने पर बची राख की मात्रा कम-से-कम ०.२ प्रतिशत तथा अधिकाधिक ४ प्रतिशत होती है । **साधारणतया राख १ प्रतिशत से कम ही बनती है । इसमें मुख्यतः कैल्सियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम तथा थोड़ी मात्रा में ऐलुमिनियम, लोहा, मैंगनीज, सोडियम, फॉस्फोरस तथा गन्धक आदि होती हैं । पोटैशियम ऑक्साइड की विद्यमानता के कारण खाद के रूप में भी राख का प्रयोग किया जा सकता है । किसी समय राख को पौटेश-प्राप्ति का मुख्य साधन समझा जाता था ।**

घृत कपूर द्वारा अग्नि प्रदीप्त कर समिधाओं पर घृत की आहुतियाँ देनी प्रारम्भ की जाती हैं । घी अग्नि को प्रज्वलित रखता है, परन्तु यदि इसका मात्र यही एक प्रयोजन होता तो किसी भी तेल या घी का प्रयोग किया जा सकता था; किन्तु शास्त्रों में गोघृत का विधान किया गया है । ऐसा क्यों ? इसका कारण है कि शुद्ध गोघृत जलने पर कोई हानिकारक पदार्थ उत्पन्न नहीं करता जबकि वनस्पति घी को जलाने का स्वास्थ्य पर सुखद प्रभाव नहीं पड़ता । इस प्रसङ्ग में डॉक्टर फुन्दनलाल अग्निहोत्री एम.डी. ने कुछ कार्य किया है । उन्होंने टी.वी. सेनेटोरियम जबलपुर में टी.वी. के रोगियों की यज्ञ के द्वारा चिकित्सा करने का प्रयास किया । उनके अनुभवानुसार गाय के घी से यज्ञ करने पर रोगी शीघ्र आरोग्य हुए । भैंस के घी से बहुत देर में लाभ हुआ, परन्तु वनस्पति घी के प्रयोग से रोग बढ़ना प्रारम्भ हो गया,[11] अतः वैदिक शास्त्रों में यज्ञ के लिए गोघृत प्रयोग करने का विधान है ।

घी ग्लिसरॉल तथा कार्बोक्सिलिक अम्लों के मेल से बना है । घी में पाये जाने वाले अम्लों में पामिटिक अम्ल, ओलीक अम्ल, मिरिस्टिक अमल, स्टिऐरिक अम्ल तथा लिनोलीइक अम्ल मुख्य हैं । वैसे इसमें थोड़ी मात्रा में ब्यूटिरिक अम्ल, लौरिक अम्ल, कैप्रिलिक अम्ल तथा कैप्रोइक अम्ल आदि भी होते हैं । अतः घृत के जलने से वही पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जो ग्लिसरॉल तथा उपर्युल्लिखित अम्लों की दहन क्रिया पर बनते हैं । इसलिए इन पदार्थों के ऑक्सीकरण आदि पर विचार करना उचित है-

ग्लिसरॉल :- ग्लिसरॉल का जलना कुछ जलहरण तथा कुछ ऑक्सीकरण है । यह मान लेने से फार्मेल्डीहाइड की उत्पत्ति सम्भव हो जाती है; क्योंकि ग्लिसरॉल के अणुओं में से पानी निकलने पर ऐक्रोलीन बन जाती है जो ऑक्सीकृत हो जाने पर फॉर्मेल्डीहाइड बना देती है (समीकरण ६ तथा ७) ।

ग्लिसरॉल के ऑक्सकरण पर कई पदार्थ बनते हैं । डॉक्टर

फीनार[13] ग्लिसरॉल के ऑक्सीकरण पर ग्लिसर ऐल्डिहाइड, ग्लिसरिक, अम्ल, टार्टरोनिक अम्ल तथा मीसोऑक्सैलिक अम्ल की उत्पत्ति मानते हैं (समीकरण८) । इनके अतिरिक्त ग्लाइकोल ऐल्डिहाइड, ग्लाइऑक्सल तथा ऑक्सैलिक अम्ल भी बन सकते हैं (समीकरण ९) ।

इस प्रकार कई पदार्थों के बनने की सम्भावना है । वास्तविक परिवर्तन तो वायु की मात्रा तथा **तापांश** आदि पर नर्भर करते हैं ।

अम्ल :- घृत में सन्तृप्त तथा असन्तृप्त दोनों प्रकार के अम्ल होते हैं । ऑक्सीकरण के समय सन्तृप्त वसीय अम्लों के परमाणु टूटकर कुछ ऐल्डिहाइड बना देते हैं । फिर ये ऐल्डिहाइड ऑक्सीजन के साथ मिलकर अम्ल में परिवर्तित हो जाते हैं । इन अम्लों से हाइड्रोकार्बनों की उत्पत्ति होती है । उदाहरणार्थ-घी में ३०-४० प्रतिशत ओलिक अम्ल होता है । इसके ऑक्सीकरण पर नार्मल नॉनिलिक ऐल्हिाइड बन जाता है (समकरण १०) । नार्मल नॉनिलिक ऐल्डिहाइड से नानेनोइक अम्ल एवं ओक्टेन (समीकरण ११) और ओलिक अम्ल से उत्पन्न दूसरे पदार्थ से नार्मल ऑक्टिलिक ऐल्डिाइड, आक्टेनोइन अम्ल एवं हेप्टेन (समीकरण १२) बनती हैं, परन्तु ये तो केवल एक सम्भावना है। इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकार के पदार्थ उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार लिनोलीइक अम्ल से कैप्रोनिक ऐल्डिाहाइड तथा वैलेरिक ऐल्डिहाइड बनते हैं ।

घृत में विद्यमान सन्तृप्त वसीय अम्ल भाप के साथ मिल साधारण छोटे अम्ल उत्पन्न करता है । फिर यह अम्ल हाइड्रोकार्बन बना सकते हैं । उदाहरणार्थ ब्यूटिरिक अम्ल सर्वप्रथम मिथेन और β-हाइड्रोक्सीप्रोपिऑनिक अम्ल बनाएगा (समीकरण १३ तथा १४) । इसी प्रकार अनेक पदार्थों की उत्पत्ति सम्भव है (समीकरण १५) । यदि अम्लों की दहन-क्रिया पूर्ण हो जाए तो कार्बन डाइऑक्साइड तथा पानी बन जाएगा ।

यह आवश्यक नहीं कि यज्ञ के समय उपर्युल्लिखित सभी क्रियाएँ पूर्ण हों, क्योंकि कई बार पदार्थ ऑक्सीकरण से पूर्व ही वायु में मिल जाता है । उदाहरणार्थ अकेले घी को अग्नि में जलाइए । सुगन्धि उत्पन्न होगी, अतः स्पष्ट है कि यहाँ ऑक्सीकरण पूर्ण नहीं हुआ अन्यथा गन्धरहित कार्बन डाइऑक्साइड गैस बन जाती । यज्ञ के समय पूर्व-उल्लिखित सभी या उनमें से कुछ पदार्थ बनते हैं ।

घी के जलने से जो सुगन्ध उत्पन्न होती है, उसका कारण कैप्रोनिक ऐल्डिहाइड, नार्मल ओक्टीलिक ऐल्डिहाइड, नार्मल नॉनलिक ऐल्डिहाइड, वैलेरिक ऐल्डिहाइड तथा कई अन्य उड़नशील ऐल्डिहाइड व वाष्पशील वसीय अमल होते हैं । ये सभी वायु में मिल जाते हैं, जिससे सर्वत्र सुगन्धि फैल जाती है ।

घी के जो कण विना जले ही वायु में उड़ जाते हैं, वे अतिसूक्ष्म होते हैं, ये अग्निहोत्र से उत्पन्न गैसों को स्वयं में लीन करके वायुमण्डल को अधिक समय तक पवित्र रखते हैं । घृत के ये कण वर्षा के लिए धूलिकणों का कार्य भी करते हैं । घी की आहुति देने से जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं उनमें हाइड्रोकार्बनों की मात्रा पर्याप्त है । ये हाइड्रोकार्बन यज्ञकुण्ड के तापांश (४५०-५५०° सेल्सियस) पर ऑक्सीजन से मिलकर कुछ अन्य पदार्थ बना लेते हैं । उदाहरणार्थ-व्हीलर तथा ब्लेयर[13] के अनुसार मिथेन ऑक्सीकरण पर मेथिल एल्कोहॉल तथा **फार्मेल्डीहाइड** आदि बना देती है (समीकरण १६) । क्योंकि ये सभी पदार्थ वायु में मिलते रहते हैं, इसलिए फार्मेल्डीहाइड के ऑक्सीकृत हो जाने की बहुत कम सम्भावना है ।

इसी प्रकार एथेन, फार्मेल्डीहाइड, ऐसीट ऐल्डिहाइड, मिथैल एल्कोहॉल, इथैल एल्कोहॉल, फार्मिक ऐसिड आदि अनेक पदार्थ बना देती है ।[14,15]

हव्य सामग्री :- जब अग्नि अच्छी प्रकार प्रज्वलित हो जाए तो सामग्री की आहुतियाँ दी जाती हैं । **सामग्री के द्रव्यों के जलने पर बनने वाले पदार्थों के विषय में अभी अनुसन्धान की आवश्यकता है ।**

कपूरकचरी, नागरमोथा, जटामांसी, सफेद चन्दन का चूरा तथा अगर आदि लकड़ी की भांति स्वयं जलकर शेष क्रियाओं के पूर्ण होने के लिए गर्मी भी उत्पन्न करते हैं ।

तिल ग्लिसरॉल तथा इलेइडिक अम्ल व स्टिऐरिक अम्ल के मेल से बना है । इसी प्रकार के कुछ वसीय अम्ल चिरौंजी, नारियल, लौंग, जौ, गेहूँ तथा चावल आदि में भी विद्यमान हैं, अतः इनके जलने से जहाँ अन्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं; वहाँ पूर्व चर्चित वैसे पदार्थ भी बनते हैं, जिनकी उत्पत्ति ग्लिसरॉल तथा वसीय अम्ल के ऑक्सीकरण से सम्भव है ।

यज्ञ-सामग्री की वस्तुओं में कार्बोहाइड्रेट भी विद्यमान है । शर्करा तथा स्टार्च इसी कार्बोहाइड्रेट के दो प्रकार हैं । चावल, गेहूँ, जौ, उड़द, कपूरकचरी तगर आदि में स्टार्च होता है । ऋषि दयानन्द ने यज्ञ में स्टार्च वाले द्रव्यों के भी डालने का विधान किया है । शर्करा वाले द्रव्यों में खाँड मुख्य है । यह यज्ञ-सामग्री में पर्याप्त मात्र में डाली जाती है । इसके अतिरिक्त शहद, दुग्ध, तगर, गेहूँ, लौंग, दाख, छुहारे, नरकूचर आदि में भी पर्याप्त मात्रा में शर्करा होती है । इनके जलने से स्वास्थ्य के लिए हितकर गैसें उत्पन्न होती हैं । फ्रांस के विज्ञान के एक भूतपूर्व अध्यापक **टिलवर्ट** का विचार है कि खाँड के तेजी से जलने पर (अग्निहोत्र में ऐसा ही होता है) **फार्मेल्डीहाइड** की उत्पत्ति होती है । **यह गैस किटाणुओं का नाश करके वायु को मनुष्योपयोगी बना देती है ।**

खाँड को वैज्ञानिक भाषा में सुक्रोस कहते हैं । २१०° सेल्सियस पर गर्म करने से इसका पानी उड़ जाता है और कार्मल नामक एक पदार्थ बन जाता है । अधिक गर्म करने पर कार्बन डाइआक्सॉइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, मेथैन, एथिलीन, ऐसीटिलीन, ऐसीटोन, फार्मिक अम्ल, एथानॉल, ऐक्रोलीन आदि उत्पन्न होते हैं । खाँड के ऑक्सीकरण पर ऑक्सैलिक अम्ल तथा सैकेरिक अम्ल बनते हैं ।

मीठे फलों और शहद में ग्लूकोस तथा फ्रक्टोज आदि होते हैं । फलों में इनकी उत्पत्ति सम्भवतः खाँड के जलीय विच्छेदन से होती है। इनके ऑक्सीकरण पर भिन्न-भिन्न पदार्थ बनते हैं । उदाहरणार्थ-ग्लूकोस के ऑक्सीकरण पर ग्लूकोनिक अम्ल, सैकेरिक अम्ल और टार्टरोनिक अम्ल वनते हैं (समीकरण १७) । इसी प्रकार अन्य पदार्थ भी ऑक्सीकृत होते रहते हैं । सभी प्रकार के दूध में लैक्टोस होता है । गौदुग्ध में इसकी मात्रा ४-६ प्रतिशत है । इसके ऑक्सीकरण पर सैकेरिक अम्ल भी वनता है ।

यज्ञ के द्वारा वायु सुगन्धित हो जाती है, क्योंकि अग्निहोत्र में कस्तूरी केसर, अगर, श्वेत चन्दन, जायफल जावित्री, लौंग कुलञ्जन, बालछड़, इलायची और कपूर आदि भी डाले जाते हैं । ये द्रव्य कुछ वाष्पशील सौरभिक पदार्थ उत्पन्न करते हैं । वस्तुतः पाइनीन, बोर्निओल, सिट्रल, सीनिऑल, टर्पिनिऑल, सैफ्रोल, थाइमोल, कार्वा-क्रॉल, सिनेमिक अम्ल, सैलिसिलिक अम्ल तथा अगर, देवदार, तिल, लौंग और सन्दल के तेल आदि की उत्पत्ति सम्भव दीख पड़ती है ।

कुलञ्जन के आसवन पर जो तेल बनता है उसमें ४८ प्रतिशत मेथिल सिनेमेट, २०-३० प्रतिशत सीनिऑल, कपूर तथा सम्भवतया पाइनीन भी होते हैं ।

दालचीनी से जो तेल निकलता है उसमें मुख्यतः सिनेमिक ऐल्डिहाइड तथा कुछ युजिनॉल, लिनेलूल तथा पाइनीन आदि मिलते हैं । तेजपत्र आसवन पर सिनेमिक ऐल्डिहाइड, वेञ्जिल-ऐल्डिहाइड, सैफ्रोल तथा युजिनॉल बनाता है ।

लौंग, भाप के द्वारा होने वाली आसवन-क्रिया पर एक तेल देती है, जिसमें ३४-९५ प्रतिशत तक फीनोल, सैस्क्वीटर्पीन तथा थोड़ी मात्रा में कीटोन, एल्कोहॉल और एस्टर होते हैं। लौंग के तेल में फरफ्यूरल तथा वैनीलिन भी होती है ।

जायफल ३०-४० प्रतिशत वसा तथा ५-२५ प्रतिशत वाष्पशील तेल देता है । पावर तथा साल्वे के विचारानुसार इस तेल में ८० प्रतिशत पाइनीन तथा कैम्फीन, ८ प्रतिशत डाइपैण्टीन, ६ प्रतिशत एल्कोहॉल, ४ प्रतिशत माइरिस्टिसिन, ०.६ प्रतिशत सैफ्रोल तथा ०.२ प्रतिशत युजिनॉल होते हैं ।

आर.एन. चोपड़ा ने लिखा है कि प्रायः चन्दन की लकड़ी को खूब बारीक रगड़कर भाप के साथ गर्म करने पर इसमें से तेल निकलता है जिस में लगभग ९० प्रतिशत सेण्टालोल होता है । यज्ञ में भी चन्दन का चूरा ही प्रयोग किया जाता है । अग्निहोत्र के समय भाप भी काफी बनती रहती है, अतः इस तेल का बनना सम्भव है । **लकड़ी के टुकड़ों के स्थान पर चूरे का प्रयोग किया जाना विज्ञान-संगत है ।** जे.एफ. दस्तूर के अनुसार "चन्दन का यह सुगन्धित तेल अपवित्रता-नाशक, कीड़ों को परे भगाने तथा मारने वाला है ।"

देवदार के तेल में पाइनीन तथा हाइड्रो कार्बन होते हैं । यह तेल कृमिरोधक है । बड़ी इलायची सीनिऑल तथा टर्पिनिऑल और बालछड़ बोर्निओल को उत्पन्न करती है ।

जो पदार्थ इस प्रकार उत्पन्न होते हैं वे २००-४००° सेल्सियस तापांश पर उड़ जाते हैं तथा वायु में मिलकर सुगन्धि पैदा करते हैं। यज्ञ के समय जो धुआँ और भाप बनता है वह इन पदार्थों को बहुत दूर तक फैला देता हैं । इस प्रकार इन पदार्थों को वायु में मिलने में सुविधा हो जाती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जलाने से किसी वस्तु का नाश नहीं होता, केवल रूप बदल जाता है । **आहुति देने के पश्चात् भी पदार्थों का उपयोगी भाग ज्यों-का-त्यों बना रहता है, वे पदार्थ केवल सूक्ष्म हो जाते हैं ।** इनका सूक्ष्म आकार इन्हें वायु में मिलने एवं फैलने में सुविधा प्रदान करता है । उड़ने वाले तेलों के परमाणुओं का व्यास लगभग १×१०^{-३} से १×१०^{-७} मिलीमीटर होता है । ये परमाणु श्वास के द्वारा रोगी के फेफड़ों में पहुँचकर क्षत को भर देते हैं ।

इन पृष्ठों में कुछ रासायनिक परिवर्तनों की चर्चा की गई है, पर ये परिवर्तन तभी फलदायक हो सकेंगे जब घी और **सामग्री थोड़ी-थोड़ी मात्रा में थोड़ी-थोड़ी देर के पश्चात् प्रज्वलित अग्नि पर डाले जाएंगे । यदि सभी द्रव्यों की आहुति एकदम, बिना किसी विधि के दे दी गई तो अग्नि भी बुझ जाएगी तथा क्रियाएँ पूर्ण न होने के कारण वाञ्छित गैसें उत्पन्न न हो सकेंगी ।** यदि सामग्री देर में डाली जाए तो गर्मी का उचित लाभ न उठाया जा सकेगा, अतः बिना विधि के किया गया अवैज्ञानिक कार्य यज्ञ नहीं कहलाएगा । ऋषि दयानन्द ने पूना में सातवें दिन का व्याख्यान देते हुए ठीक ही कहा था, "योग्य रीति से यथाविधि होम करना चाहिए । **एकदम मनभर घी जला दिया वा चम्मच-चम्मच करके मनभर घृत को वर्षभर जलाते रहे तो भी होम नहीं होगा ।"** महर्षि के इन वचनों के वैज्ञानिक महत्त्व से इन्कार नहीं किया जा सकता ।

इस असुविधा को दूर करने के लिए प्राचीन ऋषियों ने आहुति का परिमाण तथा इसके डालने का समय निश्चित किया है । ऋषिवर दयानन्द[२०] ने भी आहुति के सामान्य परिमाण के विषय में लिखा है, "कम-से-कम छह मासाभर घृत व अन्य मोहनभोगादि जो कुछ सामग्री हो, अधिक-से-अधिक छटाँकभर की आहुति देवें।" यह परिमाण साधारण यज्ञों के लिए है । बड़े यज्ञों में अधिक आहुति देने का विधान है । देव दयानन्द आगे लिखते हैं- "छह-छह मासे घृतादि एक-एक आहुति का परिमाण न्यून-से-न्यून चाहिए और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा ।" प्रत्येक आहुति देने से पूर्व उस आहुति के लिए निश्चित किए मन्त्र का उच्चारण करने का विधान है । इससे हवन सामग्री अर्पित करने का समय व्यवस्थित हो जा है तथा क्रिया सुविधापूर्वक चलती रहती है । साथ ही वेद की रक्षा तथा समय का सदुपयोग भी हो जाता है । मन्त्रों से यज्ञ के प्रत्येक अङ्ग का साथ-साथ ज्ञान होता जाता है, क्योंकि उस क्रिया से सम्बन्धित मन्त्र ही तत्-तत् क्रिया के अवसर पर उच्चारित किया जाता है । यही मन्त्रों का विनियोग कहलाता है । सारा कार्य बोझ न बनकर पवित्र, धार्मिक कृत्य बन जाता है । इसी धार्मिक भावना के कारण यज्ञ के समय कितने ही नर-नारी केवल दर्शक के रूप में बैठे रहते हैं । उन्हें भी हवनीय गैसों से युक्त सुगन्धित वायु में सांस लेकर निज स्वास्थ्य की रक्षा करने का अवसर प्राप्त होता रहता है ।

प्रकाश-संश्लेषण

यज्ञ में सूर्य की किरणों का बहुत महत्त्व है । महर्षि दयानन्द ने लिखा है, **"सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अग्निहोत्र करने का समय है ।"** वैसे भी यज्ञवेदी खुला स्थान होता है, जहाँ प्रकाश सुविधा से पहुंच सके । सूर्य के प्रकाश को इतना महत्त्व देने का कारण यह है कि यज्ञ के समय उत्पन्न हुए पदार्थों में सूर्य के प्रकाश की विद्यमानता में कई प्रकार के रासायनिक परिवर्तन होते रहते हैं । कुछ ऐल्डिहाइड और एल्कोहॉल ऑक्सीकृत हो जाते हैं । हाइड्रोकार्बन तथा फीनोल का बहुलीकरण हो जाना संभव है । परावैंगनी (ultra-violet) प्रकाश में कुछ कार्बन डाइऑक्साइड पानी के साथ मिलकर फार्मेल्डीहाइड भी बना लेती है (समीकरण १८)।

फार्मेल्डीहाइड अन्य कई परिवर्तनों के द्वारा भी बनता रहता है । उदाहरणार्थ- एसीटिक अम्ल, ग्लिसरॉल, ऐसीटोन आदि भी हवन से उत्पन्न होते हैं । **धर और आत्माराम** वायु और सूर्य के प्रकाश की विद्यमानता मे इनका फार्मेल्डीहाइड में बदल जाना सम्भव मानते हैं (समीकरण ११, २०) । पाइरूविक अम्ल ऑक्सैलिक अम्ल, ग्लूकोस, फॉर्मिक अम्ल, प्रोपिऑनिक अम्ल, खाँड, स्टार्च, स्टिऐरिक अम्ल भी सूर्य के प्रकाश में थोड़ी मात्रा में फार्मेल्डीहाइड बनाते हैं । सम्भवतः ये पदार्थ सर्वप्रथम ऑक्सीकरण के कारण फार्मेल्डीहाइड में बदल जाते हैं ।

सूर्य के प्रकाश का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य प्रकाश-संश्लेषण है । हरे पौधों में क्लोरोफिल होता है । पौधे धूप की विद्यमानता में क्लोरोफिल की सहायता से कार्बन डाईऑक्साइड को कार्बोहाइड्रेट मे बदल देते हैं । इस क्रिया को प्रकाश-संश्लेषण कहते हैं ।

क्लोरोफिल के बिना यह परिवर्तन नहीं हो सकता । भारतीय

शास्त्रकारों ने भी यज्ञवेदी के चहुँ ओर हरी लताएँ तथा पौधे लगाने का विधान किया है। इससे जहाँ स्थान की शोभा और रमणीयता बढ़ती है, वहीं प्रकाश-संश्लेषण भी होता रहता है।

प्रकाश-संश्लेषण केवल धूप में ही सम्भव है। यही कारण है कि दिन की अपेक्षा रात्रि में वायु में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा १२ प्रतिशत बढ़ जाती है। यदि कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा वायु में ०.६ प्रतिशत हो तो पता नहीं चलता। १.४ प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड से सिरपीड़ा आदि होती है। वैसे सिरपीड़ा एवं मूर्च्छा आदि का कारण कार्बन डाइआक्सॅाइड नहीं, अपितु ऑक्सीजन का अभाव होना है। यदि ७.५ प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड हो तो वायु विषाक्त बन जाती है, अतः यज्ञ के लिए सूर्योदय के पश्चात् तथा सूर्यास्त से पूर्व का समय निश्चित करना वैज्ञानिक महत्त्व रखता है।

प्रकाश-संश्लेषण के लिए पानी की विद्यमानता भी आवश्यक है। यज्ञ के समय पानी कई रासायनिक परिवर्तनों से बनता रहता है। हव्य पदार्थों में भी पर्याप्त मात्रा में पानी होता है। यही जल भाप बनकर उड़ जाता है तथा वायु में रहता है। इस प्रकार अग्निहोत्र प्रकाश-संश्लेषण की सारी शर्तें पूरा करता है।

यज्ञ के द्वारा उत्पन्न हुई कार्बन डाइआक्सॅाइड हानि नहीं पहुँचाती, अपितु पौधों के लिए भोजन देती है। पौधे कार्बन डाइऑक्साइड और ऑक्सीजन के बिना जीवित नहीं रह सकते। वनस्पति जगत् प्रतिवर्ष ६०×१०[१२] किलोग्राम कार्बन डाइऑक्साइड को निज भोजन में परिवर्तित कर रहा है। भूमि पर पड़ने वाली सूर्य की शक्ति का १×१०[-४] भाग केवल इसी क्रिया में व्यय हो रहा है, अतः कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा में किञ्चित् वृद्धि से अधिक प्रकाश-संश्लेषण होगा जिसका फसल पर सुखद प्रभाव पड़ेगा। मैक्समोव इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि "खाद की गर्म तह से आच्छादित पौधों की तेज वृद्धि केवल इस प्रकार उत्पन्न अधिक तापांश के कारण ही नहीं अपितु कार्बन डाइआक्सॅाइड की अधिक मात्रा के कारण भी होती है।"[२२] इसका प्रमाण एक वैज्ञानिक ने सन् १९०४ में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ाकर अधिक फसल उत्पन्न करके दिया है।

ऐसा समझा जाता है कि चूने की भट्ठियों में काम करने वालों को कार्बन डाइऑक्साइड की विद्यमानता के कारण फेफड़ों का क्षयरोग नहीं होता। इसी आधार पर एक फ्रेंच डॉक्टर ने क्षयरोग की एक चिकित्सा निकाली थी। विधि इस प्रकार है कि कार्बन डाइऑक्साइड से युक्त वायु में कैल्सियम धूल पर शुष्क गर्मी का प्रयोग किया जाए। फिर इस वायु में रोगी लम्बे-लम्बे खाँस लें। यह प्रयोग इस डॉक्टर के द्वारा कई रोगियों पर एक-दो दिन में बारह-बारह बार किया गया। ऐसा करने से क्षय के चिह्न दूर होने शुरू हो गए तथा रोगियों का भार भी बढ़ने लगा।[२३]

सूर्य का प्रकाश मनुष्य के लिए वैसे भी लाभदायक है। इससे शरीर में विटामिन डी बनता है, जिससे हड्डियां पुष्ट होती हैं। उदय और अस्त होने वाले सूर्य की किरणें तो और भी अधिक गुणकारी होती हैं। अथर्ववेद (२।३२।१) में कहा गया है-

उद्यन्नादित्यः क्रिमीहन्तु निम्रोचन्हन्तु रश्मिभिः।
ये अन्तः क्रिमयो गवि ।।

"उदय होता हुआ और अस्त होने वाला सूर्य अपनी किरणों से भूमि और शरीर में रहने वाले रोगजनक कीटों का नाश करता है।"

सूर्य का प्रकाश कृमिनाशक है। रावर्ट कौच ने सन् १८९० में अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि क्षयरोग (फेफड़ों के क्षयरोग को छोड़कर) के कीटाणु इस प्रकाश में दस मिनट से अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकते। इसीलिए क्षयरोग से ग्रस्त व्यक्ति को धूप सेकनी चाहिए। सम्भवतः जनसाधारण में इसको यह कहकर मान्यता प्रदान की जाती है कि अँधेरे में क्षयरोग फूलता-फलता है तथा प्रकाश में यह दुम दबाकर भाग जाता है। अतः यज्ञ के लिए सूर्योदय के पश्चात् तथा सूर्यास्त से पूर्व का समय ही ठीक है।

द्रष्टव्यः

१. ऋषि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास, तुलनाः ऋषि दयानन्द सरस्वती के पूना प्रवचन (व्याख्यान सात)

२. स्वामी दयानन्द सरस्वती, मौलवी मुहम्मद कासम और पादरी स्काट आदि के मध्य चाँदपुर मेले में २० मार्च, १८७७ को हुई चर्चा "सत्यधर्म विचार" शीर्षक से प्रकाशित पुस्तिका

३. "In all chemical and physical changes, the total mass of the system remains constant." or "Mattter can neither be created nor destroyed by any physical or chemical means though it may change its form."

४. ऋषि दयानन्द सरस्वती, यजुर्वेदभाष्य (१/८)

५. "At certain temperature and pressure, the rates of diffusion of gases are inversely proportional to the square roots of their densities."

६. ऋषि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, वेदविषयविचार

७. Hawley and Palmer, U.S. Department Agr. Bull., 129 (1914)

८. G. Bugge, 'Industrie der Helzdistillations Produkta.' Theeder Steinkoff, Dresden & Leipzig (1927)

९. Klason quoted in Henser, Cellulose Chemistry

१०. Satya Prakash, Agnihotra, The Sarvadeshik Arya Pratinidhi Sabha, Delhi (1937), pp. 130-31.

११. डॉक्टर फुन्दनलाल 'अग्निहोत्री', हवन-यज्ञ द्वारा क्षयरोग की चिकित्सा (१९४६)

१२. I.L. Finar, Organic Chemistry, Longman, London (1973)

१३. T.S. Wheeler and E.W. Blair, J. Soc. Chem. Ind., 42, 421. (1923)

१४. Bone and Andrew, J. Chem. Soc., 87, 1232 (1905)

१५. G. Eglff and R.E. Schaad, Chem. Revs., 9, 91-141 (1929)

१६. Louise Kelley, Organic Chemistry, McGraw Hill, New York, (1957)

१७. R.N. Chopra, I.C. Chopra, K.L. Handa and L.D. Kapur, Indigenous Drugs of India, Dhur & Sons, Calcutta (1958), (क) p. 275, (ख) p. 126 (ग) p. 172 (घ) p. 202, (ङ) pp. 243, 628.

१८. J.F. Dastur, Medicinal Plants of India and Pakistan, D.B. Taraporewala & Co. Ltd., Bombay (1977)

१९. ऋषि दयानन्द सरस्वती, पूना-प्रवचन, व्याख्यान सात

२०. ऋषि दयानन्द सरस्वती, संस्कारविधि, सामान्यप्रकरण

२१. N.R. Dhar and Atma Ram, J. Ind. Chem. Soc., 10, 161, 287 (1938)

२२. N.A. Maximov, Plant Physiology, McGraw Hill, New York (1938)

२३. देवयज्ञ प्रदीपिका में "हिन्दू मैसेज" के "मैडिकल सम्पलीमैण्ट" से उद्धृत

अध्याय ६ तथा ७ में सांकेतित रासायनिक परिवर्तन नीचे दिए जाते हैं-

$(C_6H_{10}O_5)_n$ cellulose + $6nO_2$ ------> $6nCO_2 + 5nH_2O$ (1)

$(C_6H_{10}O_5)_n$ + $3nO_2$ ------> $6nCO + 5nH_2O$ (2)

$(C_6H_{10}O_5)_n$ ------> $6nC + 5nH_2O$ (3)

$2C_3COOH$ acetic acid ------> $CH_3COCH_3 + CO_2 + H_2O$ acetone (4)

$2CH_4$ methane ------> $C_2H_2 + 3H_2$ acetylene (5)

$HOCH_2CH(OH)CH_2OH$ glycerol $-2H_2O$ ------> $H_2C{=}CHCHO$ acrolein (6)

$\xrightarrow{O_2}$ ------> $2CO_2+HCHO+H_2O$ formaldehyde (7)

$HOCH_2CH(OH)CH_2OH$ $\xrightarrow{O_2}$ ------> $HOCH_2CH(OH)CHO$ glycerraldehyde

$\xrightarrow{O_2}$ ------> $HOCH_2CH(OH)COOH$ glyceric acid

------> $HOCH(COOH)_2$ tartronic acid

------> $O{=}C(COOH)_2$ mesoxalic acid (8)

$HOCH_2CH(OH)CHO$ glyceraldehyde $\xrightarrow{O_2}$ ------> $HOCH_2COCHO$ hydroxypyruvic aldehyde

$\xrightarrow{O_2}$ ------> $HOCH_2COCOOH$ hydroxypyruvic acid

$\xrightarrow{-CO_2}$ ------> $HOCH_2CHO$ glycol aldehyde

$\xrightarrow{O_2}$ ------> $HOCCHO$ glyoxal

$\xrightarrow{O_2}$ ------> $HOOCCOOH$ oxalic acid

$$CH_3OH \xrightarrow[300^\circ]{Ag} \underset{\text{Formaldehyde}}{H-\overset{O}{\overset{\|}{C}}-H} + H_2$$

Methanol

(2) *By air-oxidation of methanol.* Methanol vapours and limited amount of air are passed over heated silver catalyst at 450°C.

$$2CH_3OH + O_2 \xrightarrow[450^\circ]{Ag} \underset{\text{Formaldehyde}}{2H-\overset{O}{\overset{\|}{C}}-H} + 2H_2O$$

Methanol

(3) *By air-oxidation of methane in the presence of various metallic oxides.*

$$CH_4 + O_2 \xrightarrow[\Delta]{Cat.} \underset{\text{Formaldehyde}}{H-\overset{O}{\overset{\|}{C}}-H} + H_2O$$

Since formaldehyde is a gas, the product is marketed as 40% aqueous solution under the name formalin.

Properties. (*Physical*). Formaldehyde is a colourless gas, bp –21°C. It has an irritating odour. It is extremely soluble in water.

(*Chemical*). Formaldehyde is different from other aldehydes. It contains no alkyl group in the molecule. Both hydrogen atoms may be regarded as being part of an aldehyde group. As a result, several reactions of formaldehyde are different from those of other aldehydes.

Formaldehyde has many uses, the most well-known of which is its presence in formalin, which is used for the preservation of biological specimens and embalming, which is a funeral custom of treating human **remains** to delay their decomposition."

Why formalin is used for preserving biological specimens?

"A solution of 35 to 40 per cent of water in **formaldehyde** or methanal is called **formalin**. **Formaldehyde's** formula is HCHO. ... As **formalin** is a strong disinfectant and tissue hardener, it's **used for preserving biological** and anatomical **specimens**. It's also **used** as an antiseptic in sterilising surgical instruments." Aug 22, 2004

What is the difference between formaldehyde and formalin?

"To prevent polymerization of **formaldehyde** solution, about 10 - 15% of methyl alcohol is added. It is the addition of methyl alcohol that causes the substance to be called **formalin** as opposed to **formaldehyde**. We have occasionally encountered some confusion about the **difference between formaldehyde** and **formalin**." Jan 11, 2016

What is the difference between formaldehyde and formalin?

"To prevent polymerization of **formaldehyde** solution, about 10 - 15% of methyl alcohol is added. It is the addition of methyl alcohol that causes the substance to be called **formalin** as opposed to **formaldehyde**. We have occasionally encountered some confusion about the **difference between formaldehyde** and **formalin**." Jan 11, 2016

$CH_3(CH_2)_7CH=CH(CH_2)_7COOH$
oleic acid

$\xrightarrow{O_2}$ $CH_3(CH_2)_7CHO + HOC(CH_2)_7COOH$ (10)

$CH_3(CH_2)_7CHO + O_2$
n-nonylic aldehyde

$\xrightarrow{O_2}$ $2CO_2 + H_2O$ (9)

$\xrightarrow{}$ $CH_3(CH_2)_7COOH$
nonanoic acid

$\xrightarrow{-CO_2}$ $CH_3(CH_2)_6CH_3$
octane (11)

$CHO(CH_2)_7COOH$

$\xrightarrow{-CO_2}$ $CHO(CH_2)_6CH_3$
n-octylic aldehyde

$\xrightarrow{+O_2}$ $HOOC(CH_2)_6CH_3$
octanoic acid

$\xrightarrow{-CO_2}$ $CH_3(CH_2)_5CH_3$
heptane (12)

$CH_3(CH_2)_2COOH + H_2O$
butyric acid steam

$\xrightarrow{}$ $CH_4 + HOCH_2CH_2COOH$ (13)
β-hydroxypropionic acid

$HOCH_2CH_2COOH$

$\xrightarrow{-H_2O}$ $CH_2=CHCOOH$
acrylic acid

$\xrightarrow{}$ $CH_2=CH_2 + CO_2$ (14)
ethylene

$CH_3(CH_2)_{14}COOH + 4H_2O$
palmitic acid steam

$\xrightarrow{}$ $C_2H_6 + 2HO(CH_2)_4OH +$
ethane

$C_4H_{10} + CH_3COOH$
butane acetic acid

$\xrightarrow{}$ $2CH_2=CHCH=CH_2$ (15)
1,3-butadiene

$CH_4 + O_2$
methane

$\xrightarrow{450\text{-}550^0}$ CH_3OH
methyl alcohol

$\xrightarrow{+O_2}$ $HCHO$ (16)
formaldehyde

$OCH(CHOH)_4CH_2OH$
glucose

$\xrightarrow{O_2}$ $COOH(CHOH)_4COOH$
glucosaccharic acid

$COOH(CHOH)_4CH_2OH$
gluconic acid

$\xrightarrow{}$ $HOCH(COOH)_2$ (17)
tartronic acid

$CO_2 + H_2O$

$\xrightarrow{uv}$ $HCHO + O_2$ (18)

$CH_3COOH + HOH$

$\xrightarrow{}$ $CH_3OH + HCOOH$ (19)

$2CH_3OH + O_2$

$\xrightarrow{}$ $2HCHO + H_2O$ (20)

आध्यात्म के बल पर स्थापित होगा समतामूलक समाज

विश्व में सबसे बड़ी समस्या के रूप में उभर रही अमीर और गरीब के बीच की दूरी मिटाने के लिए समतामूलक समाज की स्थापना जरूरी है। इसके लिए जात-पात और ऊंच-नीच जैसे शब्द समाज से मिटाने होंगे। समाज को खोखला कर रहे जातिवाद व धर्मवाद (सम्प्रदायवाद) समाज को लगातार कमजोर कर रहे हैं। भ्रष्ट हो चुकी राजनीति के इस दौर में समता मूलक समाज की स्थापना अध्यात्म के बल पर ही की जा सकती है। इसलिए हम लोगों ने महर्षि दयानंद के ऐतिहासिक प्रेरणादायक मंत्र से प्रेरित होकर न्यूनतम सांझा कार्यक्रम के आधार पर सर्वधर्म संसद के गठन की पहल की है। जगजाहिर है कि भारत विवधि धार्मिक संप्रदायों का देश है। इसमें भी दो राय नहीं कि हमारा समाज अपनी गहरी धार्मिकता के लिए विश्व विख्यात है। यह हमारी संस्कृति की विशेषता ही है कि दुनिया के सभी बड़े धर्म-संप्रदाय अपनी सुदृढ़ मौजूदगी के साथ बड़े पैमाने पर मिल-जुलकर यहां फल फूल रहे हैं। यहां पर एक सौ पच्चीस करोड़ से अधिक भारतीय विभिन्न रीति रिवाजों, त्योहारों, मंदिरों, मस्जिदों, गिरजाघरों और गुरुद्वारों के साथ एक अद्भुत गरिमा प्रस्तुत करते हुए प्रतीत होते हैं। हमारी इस सभ्यता पर हम सभी को गर्व है। हमारा संविधान और राजनीतिक व्यवस्था धर्म (सम्प्रदाय) निरपेक्षता की बात तो करते हैं पर भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह धर्म और राजनीतिक सत्ता के बीच विभाजन न होकर सर्वधर्म समभाव है।

इस देश की हो चुकी गंदी राजनीति कहें या समाज का नैतिक पतन, इतनी शानदार विरासत के वावजूद हमारा समाज जातिवाद विषमता, नारी उत्पीड़न और बंधुआ मजदूरी एवं बाल मजदूरी जैसे अमानवीय शोषण की कुप्रथाओं से ग्रस्त है। यहां तक कभी पशुओं को पूजने वाला भारतीय समाज पशुओं की दुर्दशा के प्रति उदासीन होता जा रहा है। एक और हम विज्ञान और आधुनिकता की बात कर रहे हैं तो वहीं दूसरी ओर काफी लोग पशुबलि तक के समर्थक हैं।

ऐसा भी नहीं कि सरकारें इसके प्रति उदासीन हैं। इन विसंगतियों को दूर करने के लिए समय-समय पर नये और कठोर कानून बनाए जाते हैं पर इसका कोई रचनात्मक प्रभाव समाज पर होता दिखाई नहीं दे रहा है। उलटे नागरिक समाज का सशक्तिकरण नहीं हो पाया है। उसके लिए हम सभी धार्मिक नेता अपनी जिम्मेदारी का अहसास करते हैं। इसके साथ ही हम धर्मनिरपेक्ष एवं सामाजिक न्याय के लिए आवश्यक प्रगतिशील मानसिकता के विकास का संकल्प लेंगे। हम सामाजिक व धार्मिक कार्यकर्ता अपने-अपने अलग-अलग भगवान के नाम पर संकल्प लें कि हम साथ मिलकर जातिवाद, लिंग भेदभाव व कन्या भ्रूण हत्या, धार्मिक अंधविश्वास, साम्प्रदायिकता एवं धर्म के नाम पर हिंसा, पर्यावरण का प्रदूषण एवं पशु पक्षियों पर होने वाली हिंसा, समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, नशीली दवाएं, तम्बाकू एवं शराब, अन्याय और उत्पीड़न। सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने के लिए रचनात्मक और सांस्कृतिक समाधान की रूपरेखा तैयार कर इसे क्रियान्वयन के लिए सर्वधर्म संसद देश के सभ्य समाज और धार्मिक नेताओं का साझा प्रयास करेंगे।

सर्वधर्म संसद अपने रचनात्मक कार्यक्रमों से समाज में व्याप्त अन्याय, अशांति, हिंसा, उत्पीड़न, पर्यावरण के नुकसान के मूल में पड़े भय और लोगों की मानसिकता का उपचार करेगा। साथ ही सत्य प्रेम, करुणा और न्याय पर आधारित समता मूलक समाज का सृजन किया जाएगा। बराबरी, भाईचारा, न्याय, पर्यावरण सुरक्षा और सुधार से समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना है। इसके लिए पूरे देश में जन जागरण अभियान चलाना होगा। गांवों से लेकर केंद्र तक, मीडिया अधिवेशनों, विचार गोष्ठी, रैलियों, नुकड़ नाटकों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से सच्ची मानवता की अलख जगानी होगी।

सर्वधर्म संस्द का विश्वास है कि अंतरजातीय विवाहों से जातिवाद को समूल नष्ट किया जा सकता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सर्वधर्म संसद अधिक से अधिक नौजवानों को अंतरजातीय विवाह के लिए प्रेरित करेगा। साथ ही अंतरजातीय विवाह सूत्रों में बंधे दंपतियों को सार्वजनिक रूप सम्मानित करेगा। जो युवा जात-पात के बंधन को तोड़कर इस तरह से विवाह करेंगे उनको आरक्षण दिलाने के लिए संघर्ष किया जाएगा। सर्वधर्म संसद योजना के तहत शहरों एवं गांवों में कन्या भ्रूण हत्या तथा दहेज प्रथा एवं दहेज हत्या जैसे जघन्य अपराध के प्रति सर्वसाधारण के बीच जागरूकता फैलाने के लिए मार्च निकाल कर प्रदर्शन करना होगा। सर्वधर्म संसद देश के सभी धर्मों और मतों का प्रतिनिधित्व करेगा। हम लोगों के प्रयास से धार्मिक नेताओं ने वादा किया कि वे लोग ऐसा प्रयास करेंगे कि धार्मिक सौहार्द और भाईचारा बढ़ाने के लिए हम सभी धर्म संप्रदायों के प्रमुख त्योहारों दीपावली, गुरुपर्व, ईद)(सेमई वाली) को मिलजुल कर मनाए जाएंगे।

सर्वधर्म संसद का लक्ष्य जनता विशेषकर नौजवानों, बुद्धिवादी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को पल्लवित करना है। इसके लिए दूरदर्शन रेडियो एवं इंटरनेट जैसे माध्यमों का अधिक से अधिक प्रयोग किया जाएगा। सर्वधर्म संसद का विश्वास है कि विकास की अवधारणा आवश्यकता पर आधारित हो न कि लोभ पर जो पर्यावरण का दोहन करती है तथा भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती है। संसार के सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव जंतुओं, पशु-पक्षियों से लेकर वर्षावनों के विशाल 'इकोसिस्टम' की रक्षा करना पर उद्देश्य है। इसके लिए मांसाहार की जगह शाकाहार को बढ़ावा देना होगा।

सर्वधर्म संसद भारत सरकार पर जोर डालेगा कि बंधुआ मजदूरी को खत्म करने के लिए एक राष्ट्रव्यापी रोजगार के मौलिक अधिकार की योजना बनाने तथा इसे ईमानदारी से लागू कराने की व्यवस्था की जाए। गरीब जनता को शराब की बुरी लत तथा दुष्प्रभावों से बचाने के लिए एक राष्ट्रीय शराब नीति बनाकर लागू करनी होगी। समतामूलक समाज की स्थापना के लिए सर्वधर्म संस्द समान अवसर और नैतिक मूल्यों की शिक्षा के लिए भी प्रयासरत रहेगी।

सर्वधर्म संसद के सप्तक्रांति संकल्प पत्र में भगवान को साक्षी मानकर शपथ लेनी होगी कि हम लोग अपने दैनिक जीवन में एक घंटा ध्यान, अहिंसा, सत्य प्रेम, करुणा एवं न्याय के गुणों की साधना के लिए लगाएंगे। जातिवाद एवं नस्लवाद मामले में विश्वास नहीं करेंगे। जातिवाद को अनेक समस्याओं की जननी माना गया है। इसमें अंतरजातीय विवाहों को बढ़ावा देंगे एवं अपने नाम से जातिसूचन चिह्नों को हटाने का पुरजोर प्रयास करेंगे।

महिलाओं के प्रति अन्याय, कन्या भ्रूण हत्या एवं दहेज की कुरीतियों का भरपूर विरोध करेंगे। पितृसत्तात्मक सोच के बदले महिलाओं के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, सशक्तीकरण एवं समता मूलक विचारों को बढ़ावा देने के लिए सभी धर्मों की पावन परंपराओं का सम्मान करेंगे। समाज में एक दूसरे के प्रति प्रेम, सम्मान एवं सौहार्द का वातावरण निर्माण करेंगे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नशीले वस्तुओं के उत्पादन क्रय-विक्रय तथा उपयोग का विरोध

शेष २२ पेज पर

SUSTAINABLE DEVELOPMENT

Sustainable development is the organizing principle for meeting human development goals while at the same time sustaining the ability of natural systems to provide the natural resources and ecosystem services upon which the economy and society depend. The desired result is a state of society where living and conditions and resource use continue to meet human needs without undermining the integrity and stability of the natural systems.

While the modern concept of sustainable development is derived mostly from the 1987 Brundtland Report, it is also rooted in earlier ideas about sustainable forest management and twentieth century environmental concerns. As the concept developed, it has shifted to focus more on economic development, social development and environmental protection for future generations. It has been suggested that "the term "sustainability" should be viewed as humanity's target goal of human-ecosystem equilibrium (homeostasis), while "sustainable development" refers to the holistic approach and temporal processes that lead us to the end point of sustainability".[1]

The concept of sustainable development has been—and still is—subject to criticism. What, exactly, is to be sustained in sustainable development? It has been argued that there is no such thing as a sustainable use of a non-renewable resource, since any positive rate of exploitation will eventually lead to the exhaustion of earth's finite stock. This perspective renders the industrial revolution as a whole unsustainable. It has also been argued that the meaning of the concept has opportunistically been stretched from "conservation management" to "economic development", and that the Brundtland Report promoted nothing but a business as usual strategy for world development, with an ambiguous and insubstantial concept attached as a public relations slogan.

History

Main articles: Sustainability and History of sustainability

Sustainability can be defined as the practice of maintaining processes of productivity indefinitely—natural or human made—by replacing resources used with resources of equal or greater value without degrading or endangering natural biotic systems.[3] Sustainable development ties together concern for the carrying capacity of natural systems with the social, political, and economic challenges faced by humanity. Sustainability science is the study of the concepts of sustainable development and environmental science. There is an additional focus on the present generations' responsibility to regenerate, maintain and improve planetary resources for use by future generations.[4]:3-8

Sustainable development has its roots in ideas about sustainable forest management which were developed in Europe during the seventeenth and eighteenth centuries.[5][2]:6-16 **In response to a growing awareness of the depletion of timber resources in England, John Evelyn argued that "sowing and planting of trees had to be regarded as a national duty of every landowner, in order to stop the destructive over-exploitation of natural resources"** in his 1662 essay Sylva. In 1713 Hans Carl von Carlowitz, a senior mining administrator in the service of Elector Frederick Augustus I of Saxony published Sylvicultura oeconomica, a 400-page work on forestry. Building upon the ideas of Evelyn and French minister Jean-Baptiste Colbert, von Carlowitz developed the concept of managing forests for sustained yield.[5] His work influenced others, including Alexander von Humboldt and Georg Ludwig Hartig, eventually leading to the development of a science of forestry. This in turn influenced people like Gifford Pinchot, first head of the US Forest Service, whose approach to forest management was driven by the idea of wise use of resources, and Aldo Leopold whose land ethic was influential in the development of the environmental movement in the 1960s. [5][2]

Following the publication of Rachel Carson's Silent Spring in 1962, the developing environmental movement drew attention to the relationship between economic growth and development and environmental degradation. Kenneth E. Boulding in his influential 1966 essay The Economics of the Coming Spaceship Earth identified the need for the economic system to fit itself to the ecological system with its limited pools of resources.[2] One of the first uses of the term sustainable in the contemporary sense was by the Club of Rome in 1972 in its classic report on the Limits to Growth, written by a group of scientists led by Dennis and Donella Meadows of the Massachusetts Institute of Technology. Describing the desirable "state of global equilibrium", the authors wrote: "We are searching for a model output that represents a world system that is sustainable without sudden and uncontrolled collapse and capable of satisfying the basic material requirements of all of its people."[4]

In 1980 the International Union for the Conservation of Nature published a world conservation strategy that included one of the first references to sustainable development as a global priority[6] and introduced the term "sustainable development".[7]:4 Two years later, the United Nations World Charter for Nature raised five principles of conservation by which human conduct affecting nature is to be guided and judged.[8] In 1987 the United Nations World Commission on Environment and Development released the report Our Common Future, commonly called the Brundtland Report. The report included what is now one of the most widely recognised definitions of sustainable development.[9][10]

" Sustainable development is development that meets the

needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their own needs. It contains within it two key concepts:

·The concept of 'needs', in particular, the essential needs of the world's poor, to which overriding priority should be given; and

· The idea of limitations imposed by the state of technology and social organization on the environment's ability to meet present and future needs. "

—?World Commission on Environment and Development, Our Common Future (1987)

Since the Brundtland Report, the concept of sustainable development has developed beyond the initial intergenerational framework to focus more on the goal of "socially inclusive and environmentally sustainable economic growth".[7]:5 In 1992, the UN Conference on Environment and Development published the Earth Charter, which outlines the building of a just, sustainable, and peaceful global society in the 21st century. The action plan Agenda 21 for sustainable development identified information, integration, and participation as key building blocks to help countries achieve development that recognises these interdependent pillars. It emphasises that in sustainable development everyone is a user and provider of information. It stresses the need to change from old sector-centered ways of doing business to new approaches that involve cross-sectoral co-ordination and the integration of environmental and social concerns into all development processes. Furthermore, Agenda 21 emphasises that broad public participation in decision making is a fundamental prerequisite for achieving sustainable development. [11]

Under the principles of the United Nations Charter the Millennium Declaration identified principles and treaties on sustainable development, including economic development, social development and environmental protection. Broadly defined, sustainable development is a systems approach to growth and development and to manage natural, produced, and social capital for the welfare of their own and future generations. The term sustainable development as used by the United Nations incorporates both issues associated with land development and broader issues of human development such as education, public health, and standard of living.[citation needed]

A 2013 study concluded that sustainability reporting should be reframed through the lens of four interconnected domains: ecology, economics, politics and culture. [12]

The Sustainable Development Goals (SDGs)

In September 2015, the United Nations General Assembly formally adopted the "universal, integrated and transformative" 2030 Agenda for Sustainable Development, a set of 17 Sustainable Development Goals (SDGs). The goals are to be implemented and achieved in every country from the year 2016 to 2030.

Domains

Scheme of sustainable development: at the confluence of three constituent parts. (2006)

Sustainable development, or sustainability, has been described in terms of three spheres, dimensions, domains or pillars, i.e. the environment, the economy and society. The three-sphere framework was initially proposed by the economist René Passet in 1979.[13] It has also been worded as "economic, environmental and social" or "ecology, economy and equity".[14] This has been expanded by some authors to include a fourth pillar of culture, institutions or governance, [14] or alternatively reconfigured as four domains of the social - ecology, economics, politics and culture[15], thus bringing economics back inside the social, and treating ecology as the intersection of the social and the natural.[16]

Environmental (or ecological)

Graph comparing the Ecological Footprint of different nations with their Human Development Index

Relationship between ecological footprint and Human Development Index (HDI)

The ecological stability of human settlements is part of the relationship between humans and their natural, social and built environments.[17] Also termed human ecology, this broadens the focus of sustainable development to include the domain of human health. Fundamental human needs such as the availability and quality of air, water, food and shelter are also the ecological foundations for sustainable development;[18] addressing public health risk through investments in ecosystem services can be a powerful and transformative force for sustainable development which, in this sense, extends to all species.[19]

Environmental sustainability concerns the natural environment and how it endures and remains diverse and productive. Since natural resources are derived from the environment, the state of air, water, and the climate are of particular concern. The IPCC Fifth Assessment Report outlines current knowledge about scientific, technical and socio-economic information concerning climate change, and lists options for adaptation and mitigation.[20] Environmental sustainability requires society to design activities to meet human needs while preserving the life support systems of the planet. This, for example, entails using water sustainably, utilizing renewable energy, and sustainable material supplies (e.g. harvesting wood from forests at a rate that maintains the biomass and biodiversity).[citation needed]

An unsustainable situation occurs when natural capital (the sum total of nature's resources) is used up faster than it can be replenished. Sustainability requires that human activity only uses nature's resources at a rate at which they can be replenished naturally. Inherently the concept of sustainable development is intertwined with the concept of carrying capacity. Theoretically, the long-term result of environmental degradation is the inability to sustain human life. Such degradation on a global scale should imply an increase in human death rate until population falls to what the degraded environment can support.[citation needed] If the

degradation continues beyond a certain tipping point or critical threshold it would lead to eventual extinction for humanity.[citation needed]

Consumption of non-renewable resources State of environment Sustainability

More than nature's ability to replenish Environmental degradation Not sustainable

Equal to nature's ability to replenish Environmental equilibrium Steady state economy

Less than nature's ability to replenish Environmental renewal Environmentally sustainable

Integral elements for a sustainable development are research and innovation activities. A telling example is the European environmental research and innovation policy, which aims at defining and implementing a transformative agenda to greening the economy and the society as a whole so to achieve a truly sustainable development. Research and innovation in Europe is financially supported by the programme Horizon 2020, which is also open to participation worldwide.[21] A promising direction towards sustainable development is to design systems that are flexible and reversible.[22][23]

Pollution of the public resources is really not a different action, it just is a reverse tragedy of the commons, in that instead of taking something out, something is put into the commons. When the costs of polluting the commons are not calculated into the cost of the items consumed, then it becomes only natural to pollute, as the cost of pollution is external to the cost of the goods produced and the cost of cleaning the waste before it is discharged exceeds the cost of releasing the waste directly into the commons. So, the only way to solve this problem is by protecting the ecology of the commons by making it, through taxes or fines, more costly to release the waste directly into the commons than would be the cost of cleaning the waste before discharge. [24]

So, one can try to appeal to the ethics of the situation by doing the right thing as an individual, but in the absence of any direct consequences, the individual will tend to do what is best for the person and not what is best for the common good of the public. Once again, this issue needs to be addressed. Because, left unaddressed, the development of the commonly owned property will become impossible to achieve in a sustainable way. So, this topic is central to the understanding of creating a sustainable situation from the management of the public resources that are used for personal use.

Agriculture

Sustainable agriculture consists of environment friendly methods of farming that allow the production of crops or livestock without damage to human or natural systems. It involves preventing adverse effects to soil, water, biodiversity, surrounding or downstream resources—as well as to those working or living on the farm or in neighboring areas. The concept of sustainable agriculture extends intergenerationally, passing on a conserved or improved natural resource, biotic, and economic base rather than one which has been depleted or polluted.[25] Elements of sustainable agriculture include permaculture, agroforestry, mixed farming, multiple cropping, and crop rotation.[26] It involves agricultural methods that do not undermine the environment, smart farming technologies that enhance a quality environment for humans to thrive and reclaiming and transforming deserts into farmlands (Herman Daly, 2017). [citation needed]

Numerous sustainability standards and certification systems exist, including organic certification, Rainforest Alliance, Fair Trade, UTZ Certified, Bird Friendly, and the Common Code for the Coffee Community (4C).[27] [28]

Economics

A sewage treatment plant that uses solar energy, located at Santuari de Lluc monastery, Majorca.

It has been suggested that because of rural poverty and overexploitation, environmental resources should be treated as important economic assets, called natural capital.[29] Economic development has traditionally required a growth in the gross domestic product. This model of unlimited personal and GDP growth may be over. [30] Sustainable development may involve improvements in the quality of life for many but may necessitate a decrease in resource consumption.[31] According to ecological economist Malte Faber, ecological economics is defined by its focus on nature, justice, and time. Issues of intergenerational equity, irreversibility of environmental change, uncertainty of long-term outcomes, and sustainable development guide ecological economic analysis and valuation. [32]

As early as the 1970s, the concept of sustainability was used to describe an economy "in equilibrium with basic ecological support systems".[33] Scientists in many fields have highlighted The Limits to Growth, [34] [35] and economists have presented alternatives, for example a 'steady-state economy'; [36] to address concerns over the impacts of expanding human development on the planet. In 1987 the economist Edward Barbier published the study The Concept of Sustainable Economic Development, where he recognised that goals of environmental conservation and economic development are not conflicting and can be reinforcing each other. [37]

A World Bank study from 1999 concluded that based on the theory of genuine savings, policymakers have many possible interventions to increase sustainability, in macro-economics or purely environmental. [38] A study from 2001 noted that efficient policies for renewable energy and pollution are compatible with increasing human welfare, eventually reaching a golden-rule steady state.[39] The study, Interpreting Sustainability in Economic Terms, found three pillars of sustainable development, interlinkage, inter-generational equity, and dynamic efficiency. [40]

But Gilbert Rist points out that the World Bank has twisted the notion of sustainable development to prove that economic development need not be

deterred in the interest of preserving the ecosystem. He writes: "From this angle, 'sustainable development' looks like a cover-up operation. The thing that is meant to be sustained is really 'development', not the tolerance capacity of the ecosystem or of human societies." [41]

The World Bank, a leading producer of environmental knowledge, continues to advocate the win-win prospects for economic growth and ecological stability even as its economists express their doubts.[42] Herman Daly, an economist for the Bank from 1988 to 1994, writes:

When authors of WDR '92 [the highly influential 1992 World Development Report that featured the environment] were drafting the report, they called me asking for examples of "win-win" strategies in my work. What could I say? None exists in that pure form; there are trade-offs, not "win-wins." But they want to see a world of "win-wins" based on articles of faith, not fact. I wanted to contribute because WDRs are important in the Bank, [because] task managers read [them] to find philosophical justification for their latest round of projects. But they did not want to hear about how things really are, or what I find in my work..."[43]

A meta review in 2002 looked at environmental and economic valuations and found a lack of "sustainability policies".[44] A study in 2004 asked if we consume too much.[45] A study concluded in 2007 that knowledge, manufactured and human capital (health and education) has not compensated for the degradation of natural capital in many parts of the world.[46] It has been suggested that intergenerational equity can be incorporated into a sustainable development and decision making, as has become common in economic valuations of climate economics.[47] A meta review in 2009 identified conditions for a strong case to act on climate change, and called for more work to fully account of the relevant economics and how it affects human welfare. [48] According to free-market environmentalist John Baden "the improvement of environment quality depends on the market economy and the existence of legitimate and protected property rights". They enable the effective practice of personal responsibility and the development of mechanisms to protect the environment. The State can in this context "create conditions which encourage the people to save the environment". [49]

Misum, Mistra Center for Sustainable Markets, based at Stockholm School of Economics, aims to provide policy research and advice to Swedish and international actors on Sustainable Markets. Misum is a cross-disciplinary and multi-stakeholder knowledge center dedicated to sustainability and sustainable markets and contains three research platforms: Sustainability in Financial Markets (Mistra Financial Systems), Sustainability in Production and Consumption and Sustainable Socio-Economic Development. [50]

Environmental Economics

The total environment includes not just the biosphere of earth, air, and water, but also human interactions with these things, with nature, and what humans have created as their surroundings. [51]

As countries around the world continue to advance economically, they put a strain on the ability of the natural environment to absorb the high level of pollutants that are created as a part of this economic growth. Therefore, solutions need to be found so that the economies of the world can continue to grow, but not at the expense of the public good. In the world of economics the amount of environmental quality must be considered as limited in supply and therefore is treated as a scarce resource. This is a resource to be protected. One common way to analyze possible outcomes of policy decisions on the scarce resource is to do a cost-benefit analysis. This type of analysis contrasts different options of resource allocation and, based on an evaluation of the expected courses of action and the consequences of these actions, the optimal way to do so in the light of different policy goals can be elicited. [52]

Benefit-cost analysis basically can look at several ways of solving a problem and then assigning the best route for a solution, based on the set of consequences that would result from the further development of the individual courses of action, and then choosing the course of action that results in the least amount of damage to the expected outcome for the environmental quality that remains after that development or process takes place. Further complicating this analysis are the interrelationships of the various parts of the environment that might be impacted by the chosen course of action. Sometimes it is almost impossible to predict the various outcomes of a course of action, due to the unexpected consequences and the amount of unknowns that are not accounted for in the benefit-cost analysis. [citation needed]

Energy

Main articles: Smart grid and **Sustainable Energy**

Sustainable energy is clean and can be used over a long period of time. Unlike fossil fuels and biofuels that provide the bulk of the worlds energy, renewable energy sources like hydroelectric, solar and wind energy produce far less pollution.[53][54] Solar energy is commonly used on public parking meters, street lights and the roof of buildings.[55] Wind power has expanded quickly, its share of worldwide electricity usage at the end of 2014 was 3.1%.[56] Most of California's fossil fuel infrastructures are sited in or near low-income communities, and have traditionally suffered the most from California's fossil fuel energy system. These communities are historically left out during the decision-making process, and often end up with dirty power plants and other dirty energy projects that poison the air and harm the area. These toxicants are major contributors to health problems in the communities. As renewable energy becomes more common, fossil fuel infrastructures are replaced by renewables, providing better social equity to these communities.[57] Overall, and in the long run, sustainable development in the field of energy is also deemed to

contribute to economic sustainability and national security of communities, thus being increasingly encouraged through investment policies. [58]

Main article : Green manufacturing and Distributed manufacturing

Technology

One of the core concepts in sustainable development is that technology can be used to assist people meet their developmental needs. Technology to meet these sustainable development needs is often referred to as appropriate technology, which is an ideological movement (and its manifestations) originally articulated as intermediate technology by the economist E. F. Schumacher in his influential work, Small is Beautiful. and now covers a wide range of technologies.[59] Both Schumacher and many modern-day proponents of appropriate technology also emphasise the technology as people-centered.[60] Today appropriate technology is often developed using open source principles, which have led to open-source appropriate technology (OSAT) and thus many of the plans of the technology can be freely found on the Internet.[61] OSAT has been proposed as a new model of enabling innovation for sustainable development. [62] [63]

Transport

See also: Sustainable transport

Transportation is a large contributor to greenhouse gas emissions. It is said that one-third of all gasses produced are due to transportation.[64] Motorized transport also releases exhaust fumes that contain particulate matter which is hazardous to human health and a contributor to climate change. [65]

Sustainable transport has many social and economic benefits that can accelerate local sustainable development. According to a series of reports by the Low Emission Development Strategies Global Partnership (LEDS GP), sustainable transport can help create jobs,[66] improve commuter safety through investment in bicycle lanes and pedestrian pathways,[67] make access to employment and social opportunities more affordable and efficient. It also offers a practical opportunity to save people's time and household income as well as government budgets,[68] making investment in sustainable transport a 'win-win' opportunity.

Some Western countries are making transportation more sustainable in both long-term and short-term implementations.[69] An example is the modification in available transportation in Freiburg, Germany. The city has implemented extensive methods of public transportation, cycling, and walking, along with large areas where cars are not allowed. [64]

Since many Western countries are highly automobile-oriented, the main transit that people use is personal vehicles. About 80% of their travel involves cars.[64] Therefore, California, is one of the highest greenhouse gases emitters in the United States. The federal government has to come up with some plans to reduce the total number of vehicle trips in order to lower greenhouse gases emission. Such as:

Improve public transit through the provision of larger coverage area in order to provide more mobility and accessibility, new technology to provide a more reliable and responsive public transportation network. [70]

Encourage walking and biking through the provision of wider pedestrian pathway, bike share stations in downtowns, locate parking lots far from the shopping center, limit on street parking, slower traffic lane in downtown area.

Increase the cost of car ownership and gas taxes through increased parking fees and tolls, encouraging people to drive more fuel efficient vehicles. This can produce a social equity problem, since lower income people usually drive older vehicles with lower fuel efficiency. Government can use the extra revenue collected from taxes and tolls to improve public transportation and benefit poor communities. [71]

Other states and nations have built efforts to translate knowledge in behavioral economics into evidence-based sustainable transportation policies. [citation needed]

Business

The most broadly accepted criterion for corporate sustainability constitutes a firm's efficient use of natural capital. This eco-efficiency is usually calculated as the economic value added by a firm in relation to its aggregated ecological impact.[72] This idea has been popularised by the World Business Council for Sustainable Development (WBCSD) under the following definition: "Eco-efficiency is achieved by the delivery of competitively priced goods and services that satisfy human needs and bring quality of life, while progressively reducing ecological impacts and resource intensity throughout the life-cycle to a level at least in line with the earth's carrying capacity"

Similar to the eco-efficiency concept but so far less explored is the second criterion for corporate sustainability. Socio-efficiency [74] describes the relation between a firm's value added and its social impact. Whereas, it can be assumed that most corporate impacts on the environment are negative (apart from rare exceptions such as the planting of trees) this is not true for social impacts. These can be either positive (e.g. corporate giving, creation of employment) or negative (e.g. work accidents, mobbing of employees, human rights abuses). Depending on the type of impact socio-efficiency thus either tries to minimise negative social impacts (i.e. accidents per value added) or maximise positive social impacts (i.e. donations per value added) in relation to the value added.[citation needed]

Both eco-efficiency and socio-efficiency are concerned primarily with increasing economic sustainability. In this process they instrumentalise both natural and social capital aiming to benefit from win-win situations. However, as Dyllick and Hockerts [74] point out the business case alone will not be sufficient to realise sustainable development. They point towards eco-effectiveness, socio-effectiveness, sufficiency, and eco-equity as four criteria that need to be met if sustainable development is to be reached.[citation needed]

CASI Global, New York "CSR &

Sustainability together lead to sustainable development. CSR as in corporate social responsibility is not what you do with your profits, but is the way you make profits. This means CSR is a part of every department of the company value chain and not a part of HR / independent department. Sustainability as in effects towards Human resources, Environment and Ecology has to be measured within each department of the company."

Income

At the present time, sustainable development, along with the solidarity called for in Catholic social teaching, can reduce poverty. While over many thousands of years the 'stronger' (economically or physically) overcame the weaker, nowadays for various reasons—Catholic social teaching, social solidarity, sustainable development—the stronger helps the weaker. This aid may take various forms. 'The Stronger' offers real help rather than striving for the elimination or annihilation of the other. Sustainable development reduces poverty through financial (among other things, a balanced budget), environmental (living conditions), and social (including equality of income) means.[75]

Architecture

In sustainable architecture the recent movements of New Urbanism and New Classical architecture promote a sustainable approach towards construction, that appreciates and develops smart growth, architectural tradition and classical design.[76][77] This in contrast to modernist and International Style architecture, as well as opposing to solitary housing estates and suburban sprawl, with long commuting distances and large ecological footprints.[78] Both trends started in the 1980s. (It should be noted that sustainable architecture is predominantly relevant to the economics domain while architectural landscaping pertains more to the ecological domain.)

Politics

A study concluded that social indicators and, therefore, sustainable development indicators, are scientific constructs whose principal objective is to inform public policy-making.[79] The International Institute for Sustainable Development has similarly developed a political policy framework, linked to a sustainability index for establishing measurable entities and metrics. The framework consists of six core areas, international trade and investment, economic policy, climate change and energy, measurement and assessment, natural resource management, and the role of communication technologies in sustainable development.

The United Nations Global Compact Cities Programme has defined sustainable political development in a way that broadens the usual definition beyond states and governance. The political is defined as the domain of practices and meanings associated with basic issues of social power as they pertain to the organisation, authorisation, legitimation and regulation of a social life held in common. This definition is in accord with the view that political change is important for responding to economic, ecological and cultural challenges. It also means that the politics of economic change can be addressed. They have listed seven subdomains of the domain of politics:[80]

Organization and governance
Law and justice
Communication and critique
Representation and negotiation
Security and accord
Dialogue and reconciliation
Ethics and accountability

This accords with the Brundtland Commission emphasis on development that is guided by human rights principles

Culture

Framing of sustainable development progress according to the Circles of Sustainability, used by the United Nations.

Working with a different emphasis, some researchers and institutions have pointed out that a fourth dimension should be added to the dimensions of sustainable development, since the triple-bottom-line dimensions of economic, environmental and social do not seem to be enough to reflect the complexity of contemporary society. In this context, the Agenda 21 for culture and the United Cities and Local Governments (UCLG) Executive Bureau lead the preparation of the policy statement "Culture: Fourth Pillar of Sustainable Development", passed on 17 November 2010, in the framework of the World Summit of Local and Regional Leaders – 3rd World Congress of UCLG, held in Mexico City. This document inaugurates a new perspective and points to the relation between culture and sustainable development through a dual approach: developing a solid cultural policy and advocating a cultural dimension in all public policies. The Circles of Sustainability approach distinguishes the four domains of economic, ecological, political and cultural sustainability.[81] [82] [83]

Other organizations have also supported the idea of a fourth domain of sustainable development. The Network of Excellence "Sustainable Development in a Diverse World",[84] sponsored by the European Union, integrates multidisciplinary capacities and interprets cultural diversity as a key element of a new strategy for sustainable development. The Fourth Pillar of Sustainable Development Theory has been referenced by executive director of IMI Institute at UNESCO Vito Di Bari[85] in his manifesto of art and architectural movement Neo-Futurism, whose name was inspired by the 1987 United Nations' report Our Common Future. The Circles of Sustainability approach used by Metropolis defines the (fourth) cultural domain as practices, discourses, and material expressions, which, over time, express continuities and discontinuities of social meaning.

Themes

This section possibly contains original research. Please improve it by verifying the claims made and adding inline citations. Statements consisting only of original research should be removed. (April 2014)

The United Nations Conference on Sustainable Development (UNCSD; also known as Rio 2012) was the third international conference on

sustainable development, which aimed at reconciling the economic and environmental goals of the global community. An outcome of this conference was the development of the Sustainable Development Goals that aim to promote sustainable progress and eliminate inequalities around the world. However, few nations met the World Wide Fund for Nature's definition of sustainable development criteria established in 2006. [86] Although some nations are more developed than others, all nations are constantly developing because each nation struggles with perpetuating disparities, inequalities and unequal access to fundamental rights and freedoms.

Measurement

Deforestation and increased road-building in the Amazon Rainforest are a concern because of increased human encroachment upon wilderness areas, increased resource extraction and further threats to biodiversity.

In 2007 a report for the U.S. Environmental Protection Agency stated: "While much discussion and effort has gone into sustainability indicators, none of the resulting systems clearly tells us whether our society is sustainable. At best, they can tell us that we are heading in the wrong direction, or that our current activities are not sustainable. More often, they simply draw our attention to the existence of problems, doing little to tell us the origin of those problems and nothing to tell us how to solve them."[88] Nevertheless, a majority of authors assume that a set of well defined and harmonised indicators is the only way to make sustainability tangible. Those indicators are expected to be identified and adjusted through empirical observations (trial and error). [89]

The most common critiques are related to issues like data quality, comparability, objective function and the necessary resources.[90] However a more general criticism is coming from the project management community: How can a sustainable development be achieved at global level if we cannot monitor it in any single project ? [91] [92]

The Cuban-born researcher and entrepreneur Sonia Bueno suggests an alternative approach that is based upon the integral, long-term cost-benefit relationship as a measure and monitoring tool for the sustainability of every project, activity or enterprise. [93] [94] Furthermore, this concept aims to be a practical guideline towards sustainable development following the principle of conservation and increment of value rather than restricting the consumption of resources. [citation needed]

Reasonable qualifications of sustainability are seen U.S. Green Building Council's (USGBC) Leadership in Energy and Environmental Design (LEED). This design incorporates some ecological, economic, and social elements. The goals presented by LEED design goals are sustainable sites, water efficiency, energy and atmospheric emission reduction, material and resources efficiency, and indoor environmental quality. Although amount of structures for sustainability development is many, these qualification has become a standard for sustainable building.[citation needed]

Recent research efforts created also the SDEWES Index to benchmark the performance of cities across aspects that are related to energy, water and environment systems. The SDEWES Index consists of 7 dimensions, 35 indicators, and close to 20 sub-indicators. It is currently applied to 58 cities.

Natural Capital

Deforastation of native rain forest in Rio de Janeiro City for extraction of clay for civil construction

Deforestation of native rain forest in Rio de Janeiro City for extraction of clay for civil engineering (2009 picture).

The sustainable development debate is based on the assumption that societies need to manage three types of capital (economic, social, and natural), which may be non-substitutable and whose consumption might be irreversible.[96] Leading ecological economist and steady-state theorist Herman Daly, [36] for example, points to the fact that natural capital can not necessarily be substituted by economic capital. While it is possible that we can find ways to replace some natural resources, it is much more unlikely that they will ever be able to replace eco-system services, such as the protection provided by the ozone layer, or the climate stabilizing function of the Amazonian forest. In fact natural capital, social capital and economic capital are often complementarities. A further obstacle to substitutability lies also in the multi-functionality of many natural resources. Forests, for example, not only provide the raw material for paper (which can be substituted quite easily), but they also maintain biodiversity, regulate water flow, and absorb CO_2.

Another problem of natural and social capital deterioration lies in their partial irreversibility. The loss of biodiversity, for example, is often definitive. The same can be true for cultural diversity. For example, with globalisation advancing quickly the number of indigenous languages is dropping at alarming rates. Moreover, the depletion of natural and social capital may have non-linear consequences. Consumption of natural and social capital may have no observable impact until a certain threshold is reached. A lake can, for example, absorb nutrients for a long time while actually increasing its productivity. However, once a certain level of algae is reached lack of oxygen causes the lake's ecosystem to break down suddenly.

Business-as-usual

Before flue-gas desulfurization was installed, the air-polluting emissions from this power plant in New Mexico contained excessive amounts of sulfur dioxide.

If the degradation of natural and social capital has such important consequence the question arises why action is not taken more systematically to alleviate it. Cohen and Winn[97] point to four types of market failure as possible explanations: First, while the benefits of natural or social capital depletion can usually be privatised, the costs are often externalised (i.e. they are borne not by the party responsible but

by society in general). Second, natural capital is often undervalued by society since we are not fully aware of the real cost of the depletion of natural capital. Information asymmetry is a third reason—often the link between cause and effect is obscured, making it difficult for actors to make informed choices. Cohen and Winn close with the realization that contrary to economic theory many firms are not perfect optimisers. They postulate that firms often do not optimise resource allocation because they are caught in a "business as usual" mentality.

Education

Main page: Education for sustainable development

Education must be revisited in light of a renewed vision of sustainable human and social development that is both equitable and viable. This vision of sustainability must take into consideration the social, environmental and economic dimensions of human development and the various ways in which these relate to education: 'An empowering education is one that builds the human resources we need to be productive, to continue to learn, to solve problems, to be creative, and to live together and with nature in peace and harmony. When nations ensure that such an education is accessible to all throughout their lives, a quiet revolution is set in motion: education becomes the engine of sustainable development and the key to a better world.' [98] [99]

Higher education in sustainability across education streams including engineering, finance, supply chain and operations is gaining weight-age. Multiple institutes including Wharton, Columbia, CASI Global New York offer certifications in Sustainability.

It has been argued that since the 1960s, the concept of sustainable development has changed from "conservation management" to "economic development", whereby the original meaning of the concept has been stretched somewhat.

In the 1960s, the international community realised that many African countries needed national plans to safeguard wildlife habitats, and that rural areas had to confront the limits imposed by soil, climate and water availability. This was a strategy of conservation management. In the 1970s, however, the focus shifted to the broader issues of the provisioning of basic human needs, community participation as well as appropriate technology use throughout the developing countries (and not just in Africa). This was a strategy of economic development, and the strategy was carried even further by the Brundtland Commission's report on Our Common Future when the issues went from regional to international in scope and application. [100] : 48 – 54 In effect, the conservationists were crowded out and superseded by the developers.

But shifting the focus of sustainable development from conservation to development has had the imperceptible effect of stretching the original forest management term of sustainable yield from the use of renewable resources only (like forestry), to now also accounting for the use of non-renewable resources (like minerals).[101]:13 This stretching of the term has been questioned. Thus, environmental economist Kerry Turner has argued that literally, there can be no such thing as overall "sustainable development" in an industrialised world economy that remains heavily dependent on the extraction of earth's finite stock of exhaustible mineral resources: "It makes no sense to talk about the sustainable use of a non-renewable resource (even with substantial recycling effort and use rates). Any positive rate of exploitation will eventually lead to exhaustion of the finite stock."

In effect, it has been argued that the industrial revolution as a whole is unsustainable.

One critic has argued that the Brundtland Commission promoted nothing but a business as usual strategy for world development, with the ambiguous and insubstantial concept of "sustainable development" attached as a public relations slogan: [106] : 94–99 The report on Our Common Future was largely the result of a political bargaining process involving many special interest groups, all put together to create a common appeal of political acceptability across borders. After World War II, the notion of "development" had been established in the West to imply the projection of the American model of society onto the rest of the world. In the 1970s and 1980s, this notion was broadened somewhat to also imply human rights, basic human needs and finally, ecological issues. The emphasis of the report was on helping poor nations out of poverty and meeting the basic needs of their growing populations—as usual. This issue demanded more economic growth, also in the rich countries, who would then import more goods from the poor countries to help them out—as usual. When the discussion switched to global ecological limits to growth, the obvious dilemma was left aside by calling for economic growth with improved resource efficiency, or what was termed "a change in the quality of growth". However, most countries in the West had experienced such improved resource efficiency since the early-20th century already and as usual; only, this improvement had been more than offset by continuing industrial expansion, to the effect that world resource consumption was now higher than ever before—and these two historical trends were completely ignored in the report. Taken together, the policy of perpetual economic growth for the entire planet remained virtually intact. Since the publication of the report, the ambiguous and insubstantial slogan of "sustainable development" has marched on worldwide.

पर्यावरण एवं नैरोग्य

आज जल, वायु, अन्न, मिट्टी.... कुछ भी शुद्ध नहीं है। प्रदूषण इतना बढ़ गया है कि अमरीका, कनाडा जैसे देशों में तेजाबी वर्षा एक प्रमुख समस्या है। समस्त संसार पर्यावरण-प्रदूषण से चिन्तित है। अपने कर्त्तव्य का सुचारू रूप से पालन करती हुई प्रकृति वायु के शोधन में अवश्य महत्त्वपूर्ण योगदान करती रही है। अन्यथा, अब तक वायुमण्डल इतना प्रदूषित हो गया होता कि श्वास लेना दूभर हो जाता। अग्निहोत्र उस महान् प्रभु द्वारा रचाए गए इस महान प्राकृतिक यज्ञ का ही एक रूप है। इसके द्वारा वायु की दुर्गन्ध नष्ट होकर सुगन्ध फैलती है। वेद यज्ञ को वायु की शुद्धि का हेतु मानता है-

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्त्रधारम्। -यजुः० १।३

"यज्ञ असंख्यात संसार एवं अनेक प्रकार के ब्रह्माण्ड को धारण करनेवाला तथा शुद्धि करनेवाला कर्म है।"

इसलिए शास्त्रकारों ने प्रतिदिन यज्ञ करने का विधान किया है। मु (२।१०३) ने तो यज्ञ न करने वालों को दण्ड का भागी माना है। यजुर्वेद (१।२) भी यज्ञ का त्याग न करने का स्पष्ट आदेश देता है-

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधाऽअसि। परमेण धाम्ना दृँहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्॥

इस मन्त्र का अर्थ करते हुए ऋषि दयानन्द लिखते हैं- "हे विद्यायुक्त मनुष्य! तू जो यज्ञशुद्धि का हेतु है, जो विज्ञान के प्रकाश का हेतु और सूर्य की किरणों में स्थिर होने वाला है, जो वायु के साथ देश-देशान्तर में फैलने वाला है, जो वायु को शुद्ध करने वाला है, जो संसार का धारण करनेवाला है तथा जो उत्तम स्थान से सुख का बढ़ाने वाला है, इस यज्ञ का मत त्याग कर। तेरे यज्ञ की रक्षा करने वाला रजमान भी उसको न त्यागे।"[१]

ऋषि दयानन्द ने यज्ञ को वायु-शुद्धि का सर्वोत्तम साधन माना है। इसीलिए यजुर्वेदभाष्य में ऋषि लिखते है, "जैसी यज्ञ के अनुष्ठान से वायु और वृष्टिजल की उत्तम शुद्धि और पुष्टि होती है, वैसी दूसरे उपाय से कभी नहीं हो सकती।"[२]

ऋषि दयानन्द सरस्वती ने २० जुलाई सन् १८७५ ई. को पूना में सातवें प्रवचन में फरमाया था-

"पुष्टि-वर्धन, सुगन्ध-प्रसार और नैरोग्य ये तीन उपयोग होम अर्थात् हवन करने से होते हैं।"

"सुवृष्टि और वायु-शुद्धि होम हवनादि से होती है, इसीलिए होम करना चाहिए।"

"पहले आर्य लोगों का ऐसा सामाजिक नियम था कि प्रत्येक पुरुष प्रातःकाल स्नान के बाद आहुति देता था, क्योंकि प्रातःकाल में जो मल-मूत्रादिकों की दुर्गन्ध उत्पन्न होती थी, वह इस प्रातःकाल के हवन से दूर होती थी। इसी तरह सायंकाल में हवन करने से दिनभर की जमी हुई जो दुर्गन्ध होती है उसका नाश होकर रातभर वायु निर्मल और शुद्ध चलती थी।"

"इन दिनों होम के न्यून होने से बारम्बार वायु बिगड़ रही है, सदा विलक्षण रोग उत्पन्न होते जाते हैं।"

यज्ञ न केवल वायु की दुर्गन्ध को नष्ट करता है, अपितु इसे शुद्ध कर रोगों से भी रक्षा करता है। महर्षि दयानन्द[३] का यह विचार पूर्णतया सत्य है कि "दुर्गन्धियुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है।" ऋषि आगे लिखते हैं, "जब तक इस होम करने का प्रचार रहा, तब तक आर्यावर्त्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाए।" अतः समझना चाहिए कि प्राचीन आर्य लोग अग्निहोत्र के द्वारा वायुशुद्धि तथा आरोग्य प्राप्त किया करते थे।

वैसे तो भारत में प्रत्येक कार्य करने से पूर्व हवन किया जाता है, किन्तु विशेषरूप से ऋतु-परिवर्तन (ऋषि-सन्धि) के समय बृहद् यज्ञों का प्राचीनकाल से ही प्रचलन रहा है। इसका कारण यह है कि ऋतु-सन्धि अनेक रोग उत्पन्न करती है। इन व्याधियों का निवारण भैषज्य यज्ञों के द्वारा होता है। शतपथब्राह्मण में इसकी पुष्टि की गई है-

भैषज्ययज्ञा वा एते।
ऋतुसन्धिषु व्याधिर्जायते तस्मादृतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते॥

"ये भैषज्य यज्ञ कहलाते हैं। ऋतुओं की सन्धि में व्याधियाँ उत्पन्न होती है, इसलिए इनका प्रयोग ऋतु-सन्धि में होता है।"[४]

भारतीय घरों में नया अन्न अग्नि में अर्पित किए बिना प्रयोग में नहीं लाया जाता था। प्रत्येक ऋतु में उस ऋतु के पदार्थों द्वारा यज्ञ करने की प्रथा रही है। सम्भवतः विशेष मौसम में उत्पन्न होनेवाले पदार्थ उस समय के रोगों को दूर करने में अधिक उपयोगी होंगे। इस प्रकार के यज्ञों की चर्चा भावप्रकाश (कृतान्न वर्ग १७८) में भी की गई है-

अर्द्धपक्वैः शमीधान्यैस्तृणभृष्टैश्च होलकः।
होलकोऽल्पानिलो मेदः कफदोषश्रमापहः॥
भवेदथो होलको यस्य स तत्तद् गुणो भवेत्।

"तिनकों की अग्नि में भूने हुए अधपके शमी धान्य (फलीवाले अन्न) को 'होलक' या होला कहते हैं। होलक स्वल्प वात है और चर्बी, कफ तथा थकान के दोषों का शमन करता है। जिस-जिस अन्न का होला होता है, उसमें उसी-उसी अन्न का गुण होता है।"

अतः हवन के द्वारा रोगों का नाश किया जाना सम्भव है। ये रोग किस प्रकार उत्पन्न होते हैं तथा अग्निहोत्र से कैसे नष्ट हो सकते हैं, इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है।

आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान का मत है कि व्याधियों के जन्मदाता रोगाणु (रोगकीट, कृमि) हैं। रोगाणुवाद के लिए किसी व्यक्तिविशेष को श्रेय नहीं दिया जा सकता। यूँ तो आरम्भिक कार्य पाश्चर के द्वारा किया गया है, परन्तु इस क्षेत्र में राबर्ट कौच, स्मिथ, किलबोर्न आदि का योग भी महत्त्वपूर्ण है। कौच ने सन् १८७८ में यह सिद्ध किया था कि प्रत्येक बीमारी किसी न किसी रोगाणु के द्वारा ही पैदा होती है। यह रोगकीट भिन्न-भिन्न प्रकार के तथा बहुत छोटे होते हैं। इनमें से कई तो अतिक्षुद्र होने से दिखाई भी नहीं देते। ये साधारण ०.००३ से ०.००५ मिलीमीटर तक लम्बे होते हैं, परन्तु कई रोगाणु काफी बड़े होते हैं। छोटे से छोटे रोगकीट ०.०००२५ मिलीमीटर लम्बे होते हैं। ये अँधेरे में बढ़ते हैं। बैसिलस कॉली नामक एक कृमि लगभग बीस मिनट में टूटकर दो कृमि उत्पन्न कर देता है। फिर ये कृमि भी इसी प्रकार विभक्त होते रहते हैं। यदि परिस्थितियां अनुकूल हों

तो अकेला कृमि केवल आठ घंटे में एक करोड़ साठ लाख कृमि उत्पन्न कर देगा। यदि रोगाणु इसी गति से बढ़ते रहते तो समस्त भूमंडल पर केवल कृमि होते, परंतु ऐसा होता नहीं, क्योंकि परिस्थितियां अनुकूल न होने के कारण एक-दो दिन में तो क्या एक सप्ताह में भी बहुत कम बढ़ पाते हैं। ये रोगकीट जल, वायु तथा अन्न के साथ शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं और फिर धीरे-धीरे बढ़ते रहते हैं तथा व्यक्ति को रोगी बना देते हैं, अतः व्याधियों की रोकथाम इन रोगाणुओं को नष्ट करके ही संभव हो सकती है।

यह हुआ आधुनिक विज्ञानवादियों का मत। प्राचीन ऋषियों का सर्वस्व तो वैदिक विज्ञान ही था। उसी आधार पर उन्होंने अग्निहोत्र का आविष्कार किया। समिधाओं तथा हव्य-पदार्थों का चयन भी किया। इसलिए केवल रोगोत्पत्ति के आधुनिक कारण को ही आधार मानकर यज्ञ पर विचार करना उचित नहीं होगा। अतः विचारणीय विषय है- रोगों का वेद में वर्णित कारण। वेद भी रोगाणुवाद को मानता है।

अन्यान्त्रयं शीर्षण्य१मथो पाष्टेयं क्रिमी न्। अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन्वचसा जम्भयामसि॥

-अथर्व० २।३१।४

"आंतों में उत्पन्न होने वाले विपूचिका के कीट, शिरोभाग में उत्पन्न होने वाले दाद, खाज और पीनस रोग के उत्पादक तथा पसलियों में उत्पन्न होने वाले नासूर या राजयक्ष्मा आदि रोग के कीट, (अवस्कव) त्वचा के भीतर घुस जाने वाले रोगकीट और विकृत मांस को खाने वाले व्यध्वर नामक रोगकीट को वेदवाणी में बतलाये उपायों द्वारा नष्ट करें।" इस मन्त्र में भिन्न-भिन्न रोगों की उत्पत्ति रोगाणुओं के द्वारा बतलाई गई है।

दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहम्। अल्गण्डून्त्सर्वा न्छलुनान्क्रिमीन्वचसा जम्भयामसि॥

"दृश्य तथा अदृश्य और (कुरूरु) बुरी तरह रुलाने वाले (अल्गण्डू) अत्यधिक खाज पैदा करने वाले तथा (शलुन) शरीर में प्रवेश कर जाने वाले रोगकीटों का वेदवाणी में बताये उपायों द्वारा नाश करें।"

ये मन्त्र रोगाणु सम्बन्धी कई रहस्यों का उद्घाटन कर रहे हैं। इन मन्त्रों में अवस्कव, व्यध्वर, कुरूरु, अल्गण्डू तथा शलुन आदि जो शब्द आए हैं, वे रोगकीटों की जातियों के नाम हैं। इन नामों से कृमियों के स्वभावों का पता चलता है। वेद में रोगाणुओं के लिए निम्नलिखित नाम भी आए हैं-

निशाचार - रात्रि में संचरण करने वाला
शर्व, निहन्ता, काल-प्राणों का हरण करने वाले
भीम - भयंकर, घोर - भयानक
यज्ञघ्न - जिनकी मृत्यु यज्ञ से हो

वेद ने रोगकीट को राक्षस की संज्ञा भी दी है। ऋग्वेद (१०।१७।६) में राक्षसों को मारने वाले को वैद्य तथा रोगों को दूर करने वाला कहा गया है-

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव। विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहाऽमीवचातनः॥

अर्थात् "जिसके पास अनेक औषधियों का संग्रह होता है, उस विप्र को भिषग् (चिकित्सक) कहते हैं। वह राक्षसों का हनन करने वाला तथा रोगों को दूर करने वाला होता है।" इस मन्त्र का बुद्धिसङ्गत अर्थ करने के लिए राक्षस को रोगाणु का पर्यायवाची मानना पड़ता है। रोगाणुओं के निवास-स्थान की चर्चा निम्नलिखित मन्त्र में की गई है-

ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशु ष्वप्स्व१न्तः। ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद्भन्मि जनिम क्रिणीणाम्॥

-अथर्व० २।३१।५

"जो रोगजनक कृमि पर्वतों, वनों, औषधियों, पशुओं और पीने योग्य जलों में रहते हैं तथा जो हमारे शरीर में अन्न और जल के साथ जाते हैं- उन सबका मैं नाश करूं।"

रोगाणु भोजन आदि के द्वारा शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं।

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान

-यजुः० १६।६२

"जो खाने के अन्न तथा पीने के पानी द्वारा शरीर में प्रवेश करके नाना प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं।"

वेद यज्ञ के द्वारा कृमियों का नष्ट हो जाना सम्भव मानता है-

शर्मास्यवधूत् रक्षोऽ वधूताऽअरातयोऽदित्या स्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। -यजुः० १।१९

कई रोगाणुओं के नाम भी इस बात का प्रमाण हैं कि उनका नाश यज्ञ के द्वारा हो सकता है। उदाहरणार्थ-यज्ञघ्न रोगकीटों की एक जाति है तथा यज्ञघ्न का शाब्दिक अर्थ है- वे रोगकीट जिनकी यज्ञ से मृत्यु हो जाए। अथर्ववेद (२/३१/४) में कृमियों की एक अन्य जाति को व्यध्वर (वि+अध्वर अर्थात् यज्ञ का विरोधी) नाम से कहा गया है। इसीलिए श्री सातवलेकरजी लिखते हैं, "यज्ञ जहाँ न होंगे उस स्थान पर उत्पन्न होकर वृद्धिगत होने वाले अथवा यज्ञ से जिनका नाश होता है, ऐसे कृमियों को व्यध्वर कृमि बोलते हैं।"

हवन सूर्य के प्रकाश में किया जाता है। रवि-किरणें तथा यज्ञाग्नि दोनों कृमिनाशक हैं। रोगकीट अधिक गर्मी में जीवित नहीं रह सकते।

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती। औतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति॥

-अथर्व० ५।२३।१

"सूर्य की किरण मिट्टी, तीव्रवाणी या जलधारा, बिजली, अग्नि ये सब मिलकर नाना प्रकार के रोगकीटों का नाश करते हैं।"

उप प्रागादेवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः। दहन्नप द्वयाविनो यातुधानान्किमीदिनः॥

-अथर्व० १।२८।१

इस मन्त्र का अर्थ श्रीयुत् सातवलेकरजी ने इस प्रकार किया है- "यातुधान, किमीदिन तथा राक्षस (यह तीनों रोगकीटों की जातियों के नाम हैं) इनका नाश करने वाला तथा रोगनाशक अग्निदेव आता है।"

अग्नि तो कृमियों का नाश करने के लिए प्रसिद्ध है। अग्नि में भोजन का विष नष्ट करने की शक्ति है।

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्टै पाहि दुरद्मन्याऽअविषं नः पितुं कृणु॥ -यजुः० २।२०

अर्थात "हे निर्विघ्न आयु देने वाले जगदीश्वर! आप चराचर संसार में व्यापक यज्ञ की दुष्ट अर्थात् वेदविरुद्ध यज्ञ से रक्षा कीजिए, अति दुःखों से बचाइए तथा भारी-भारी बन्धनों से अलग रखिए, जो दुष्ट भोजन करना है उस विपत्ति से बचाइए और हमारे लिए विष आदि दोषरहित अन्नादि पदार्थ उत्पन्न कीजिए।"

केवल अग्नि में ही रोगाणुनाशक शक्ति, हो ऐसी बात नहीं। यह गुण कई वनस्पतियों में भी है।

वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचाँ अपबाधमानः। -अथर्व० १२।३।१५

"दिव्य गुणों से युक्त वनस्पति आ गई, जो राक्षसों और पिशाचों का नाश करती है।"

अजशङ्गध्य रक्षः सर्वान्गन्धेन नाशय॥

-अथर्व० ४।३७।२

"आजशृंगी नामक औषधि के गन्ध से सभी राक्षस अर्थात् रोगकीट नाश को प्राप्त होते हैं।"

यज्ञ-सामग्री में इसीलिए वनस्पतियाँ कूटकर डाली जाती हैं। इनके जलने से सुगन्धि उत्पन्न होती है। इस गन्ध से कृमि मर जाते हैं। स्वास्थ्य-लाभ की यह उत्तम विधि है।

वेद यज्ञ द्वारा रोगों की चिकित्सा होना सम्भव मानता है-

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञात यक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ -अथर्व० ३।११।१

"हे व्याधिग्रस्त मनुष्य ! तुझे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कराने के लिए हवन द्वारा अज्ञात रोगों से तथा तपेदिक जैसे ज्ञात रोग से बचाता हूँ । इसे सब अङ्गों को जकड़ने वाला रोग भी पकड़ ले तो भी इन्द्र अर्थात् शुद्ध वायु या सूर्य की गर्मी था विद्युत तथा अग्नि-होमाग्नि इसे उक्त रोग से मुक्त करें ।"

ऋषियों ने वेदमन्त्रों में छिपे इन गहन रहस्यों को समझा था । वे यज्ञों के द्वारा राष्ट्र को स्वस्थ करते थे । सम्भवतः यही कारण था कि यदि एक राष्ट्र ने दूसरे देश को हानि पहुँचानी होती थी तो वह उस देश के यज्ञों में विघ्न डालने का प्रयास किया करता था । यज्ञ की व्यवस्था भङ्ग हो जाने से अनवृष्टि तथा रोग फैल जाते थे; जिससे समस्त राष्ट्र दुःखी हो जाता था । इसीलिए ऋषियों के द्वारा रचाए गए यज्ञों की रक्षा करना राजा का मुख्य कर्त्तव्य समझा जाता था ।

आयुर्वेद के चरक, बृहन्निघण्टुरत्नाकर, योगरत्नाकर, गद-निग्रह आदि ग्रन्थों में ऐसे कई योग वर्णित हैं, जिनकी अग्नि में आहुति देने से वायुमण्डल शुद्ध होता है तथा श्वास द्वारा धूनी अन्दर लेने से रोग दूर होते हैं । प्रत्येक रोग का शमन एक ही प्रकार की सामग्री की आहुतियां देकर नहीं किया जा सकता । प्राचीन काल में ऋत्वनुसार हवन-सामग्री में परिवर्तन कर दिया जाता था । भिन्न-भिन्न व्याधियों की चिकित्सा भिन्न-भिन्न प्रकार से हव्य-सामग्री के द्वारा की जाती थी । कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं-

गर्भ-सम्बन्धी विकार

सौंठ तथा दूध को अच्छी प्रकार उबालकर काढ़ा तैयार कर लिया जाए । इस काढ़े तथा घृत की अग्नि में आठ सौ के लगभग आहुतियां देने से गर्भ तथा अपरिपक्व अवस्था-सम्बन्धी विकार दूर किए जा सकते हैं ।[६]

चेचक

चेचक की चिकित्सा के लिए निम्नलिखित सामग्री लाभप्रद है-सामान्य यज्ञ-सामग्री (२ किलोग्राम), खाँड (५०० ग्राम), सरसों, हरमल (प्रत्येक २५० ग्राम), मुनक्का, मुलहटी, बहेड़ा, नीम की निम्बोली, खूबकलाँ, मेंहदी, हल्दी, चिरायता (प्रत्येक १२५ ग्राम) तथा शहद (५० ग्राम) । इस सामग्री में गोघृत मिलाकर यज्ञ करने से चेचक रोग नष्ट हो सकता है ।

क्षय रोग

ऐसा माना जाता है कि क्षय-रोग यज्ञ करने वाले को नहीं मार सकता ।

कथं ह तत्र त्वं हनो यस्य कृष्मो हविर्गृहे ।
-अथर्व० ७।७६।५

क्षय-रोग फैलने पर चन्दन, कपूर तथा सुगन्धित फूलों से बनी धूप-वत्तियाँ जलाना हितकर है । इस व्याधि के निवारण के लिए आठ-दस दिन निरन्तर यज्ञ किया जाए । प्रतिदिन एक हजार आहुतियां दी जाएँ । पीपल, आम या ढाक की समिधाओं का प्रयोग किया जाए । पहले दिन गाय के शुद्ध पवित्र घी से यज्ञ किया जाए । फिर तीन दिन चावल, तिल, जौ, जई, मोठ को घी और शहद में भली-भांति भिगोकर आहुतियाँ दी जाएँ । अगले दो दिन शहद और गोघृत का प्रयोग किया जाए । अन्तिम दो दिनों में ढाक व पीपल की समिधाएँ तथा पुटखण्डा (अपामार्ग) को घी में अच्छी प्रकार भिगोकर डालें ।

रोग की दूसरी व तीसरी अवस्था में निम्नलिखित सामग्री का प्रयोग करना चाहिए-

कपूर, केसर, शहद (प्रत्येक ५ ग्राम), ब्राह्मी, तगर, मकोय, इन्द्रायण की जड़, ऑवला, हरड़, बादाम, पुनर्नवा, पानड़ी, बालछड़, मुनक्का मण्डूकपर्णी, शालपर्णी, गुल-सुर्ख, जायफल, असगन्ध, अडूसा, लौंग, विधारा, शतावरी, चीड़ का चूरा, वंशलोचने, पिस्ता, सुगन्धबाला, जयन्ती, खीर काकोली, खूबकलाँ, गोखरू (प्रत्येक २० ग्राम), गिलोय, गूगल (प्रत्येक ८० ग्राम) तथा देशी शक्कर (२०० ग्राम) ।

इस प्रकार यज्ञ द्वारा रोगों का उपचार किया जा सकता है, किन्तु इस क्षेत्र में पर्याप्त अनुसन्धान न होने के कारण अग्निहोत्र का उचित मूल्याङ्कन नहीं हो पा रहा है । निष्पक्ष विद्वानों के समक्ष जितनी सच्चाई आती रही, वे उतना ही यज्ञ से प्रभावित होते रहे । इस कथन की पुष्टि निम्नलिखित प्रमाणों से होती है-

१) चेचक के टीके के आविष्कारक तथा फ्राँस के प्रसिद्ध विद्वान डॉक्टर हैफकिन का विचार है कि "घृत जलाने से रोगजनक कृमि मर जाते हैं ।" भारतीय चिकित्सक तो पुरातन काल से ही घी में कृमिनाशक गुण मानते हैं । आयुर्वेद ने सभी घृतों में गोघृत को उत्तम माना है; इसलिए हवन में अधिकतर इसी का प्रयोग करने का निर्देश है ।

२) फ्राँस के निज्ञानवेत्ता ट्रिलवर्ट कहते हैं- "जलती हुई शक्कर में वायु-शुद्ध करने की बहुत बड़ी शक्ति होती है । इससे क्षय, चेचक, हैज़ा आदि रोग तुरन्त नष्ट हो जाते हैं ।"[७]

३) डॉक्टर एम. टैल्ट्र ने मुनक्का, किशमिश आदि सूखे फलों को (जिनमें शक्कर अधिक होती है) जलाकर देखा है । वे इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि इनके धुएँ में टायफाइड ज्वर के रोगकीट केवल तीस मिनट तथा दूसरी व्याधियों के रोगाणु घण्टे-दो घण्टे में मर जाते हैं ।[८]

४) प्लेग के दिनों में अब भी गन्धक जलाई जाती है, क्योंकि इससे रोगकीट नष्ट होते हैं । अंग्रेजी शासनकाल में डॉ. कर्नल किङ्ग, आई. एम.ए., मद्रास के सेनेटरी कमिश्नर थे । उनके समय में वहां प्लेग फैल गया । तब १५ मार्च, १८९८ को मद्रास विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के समक्ष भाषण देते हुए उन्होंने कहा था-"घी और चावल में केसर मिलाकर अग्नि में जलाने से प्लेग से बचा जा सकता है ।" इस भाषण का सार श्री हैफकिन ने "ब्यूबानिक प्लेग" नामक पुस्तक में देते हुए लिखा है, "हवन करना लाभदायक और बुद्धिमत्ता की बात है ।"

५) अमरीका के एक डॉक्टर ने एक बार बम्बई में भाषण दते हुए कहा था, "हम लोग सैंकड़ों वर्षों से इस खोज में थे कि फेफड़ों की तपेदिक को गैस की सुगन्धि से अच्छा किया जा सके । अब हम इसमें सफल हो गए हैं और इस चिकित्सा का परिणाम सब चिकित्सकों से बेहतर रहा है ।"[९]

६) डॉ. फुन्दनलाल अग्निहोत्री मध्यप्रदेश में राजकीय टी.बी. सेनेटोरियम में मेडिकल ऑफिसर थे । वहाँ उन्होंने यज्ञ के द्वारा तपेदिक के रोगियों की चिकित्साकी थी तथा ८० प्रतिशत रोगियों को इस विधि से पूर्ण लाभ हुआ ।[१०]

वस्तुतः उपर्युक्त कथन सत्य हैं । पूर्व वर्णित पदार्थों को जलाने से जो गैसें उत्पन्न होती हैं उनमें कृमिनाशक गुण विद्यमान हैं । यज्ञ में इनके अतिरिक्त और भी द्रव्य डाले जाते हैं, अतः ये उत्पन्न होने वाली सभी गैसें तो और भी अधिक सुख का कारण हैं । ये विद्वान् तो यज्ञ का कुछ भाग ही समझ कर उसे इतना उपयोगी बता रहे हैं । यदि कहीं वे यज्ञ के पूर्ण विज्ञान को समझ लें तो अनिहोत्र का बहुत प्रचार हो सकता है ।

अब यज्ञ से उत्पन्न होने वाली कुछ गैसों

के कृमिनाशक गुणों की चर्चा की जाती है।

फार्मेल्डीहाइड

फार्मेल्डीहाइड एक कार्बनिक पदार्थ है। यह यज्ञ में भिन्न-भिन्न क्रियाओं के द्वारा काफी मात्रा में उत्पन्न होता है। डॉक्टर एम. ट्रेल्ट ने लकड़ी के धुएँ में फार्मेल्डीहाइड को विद्यमान पाया है। यह शक्तिशाली कृमिरोधक, लाभदायक कृमिनाशक तथा धूल को कृमिरहित करने वाला माना गया है। यह वाष्पशील होने के कारण शीघ्र ही सर्वत्र फैल जाता है। यह धागे के रङ्ग को खराब किए विना कपड़ों के बीच में से निकल जाता है; इसलिए रोगियों के कमरों को स्वच्छ बनाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता हा।''

फार्मेल्डीहाइड से बहुत लाभ उठाया जाता रहा है। इसके द्वारा घरों के कृमियों का नाश तथा वायु को सुगन्धित किया जाता है। वायु की शुद्धि के लिए फार्मेल्डीहाइड लैम्प बनाए गए। इन लैम्पों में मेथिल एल्कोहॉल तथा वायु को गर्म प्लैटिनम के ऊपर जलाकर फार्मेल्डीहाइड बनाया जाता है। (समीकरण २०)।

फार्मेल्डीहाइड के साथ कुछ पानी भी उत्पन्न होता है। फार्मेल्डीहाइड जल की विद्यमानता मे ही कृमियों का नाश करता है। इसे सुखद संयोग समझिए कि यज्ञ में जहाँ अन्य कारणों से फार्मेल्डीहाइड बनता है, वहाँ उपरिलिखित विधि से भी इसकी उत्पत्ति होती है। हवन करने से जो हाइड्रोकार्बन पैदा होती है, उनके ऑक्सीकृत होने पर मेथिल एल्कोहॉल बनने की सम्भावना है। अग्नहोत्र के तापांश पर यह मेथिल एल्कोहॉल फार्मेल्डीहाइड में पिरवर्तित हो जाता है। यज्ञ में काफी मात्री में भाप भी बनती रहती है। यह भाप तथा अन्य गैसें सर्वत्र फैल जाती हैं। इसलिए जहाँ-जहाँ फार्मेल्डीहाइड होता है वहाँ कुछ मात्रा में पानी भी विद्यमान होने से कृमिनाशक क्रिया होती रहती है। अतः हवन जिस प्रकार वायु को शुद्ध और कृमिरहित करता है, आधुनिक विज्ञान की विधि भी वैसी ही है। सम्भवतः इसीलिए कर्नल किङ्ग आई. एम.ए. ने कहा था, ''घरों के कृमियों के नाश करने की हिन्दुओं की विधि आधुनिक ढङ्ग के अनुसार थी।'' ब्रिटिशकालीन मद्रास के गवर्नर लार्ड एम्पथिल ने तो यज्ञ के समर्थक महर्षि मनु को विश्व के प्रसिद्धतम एवं महानतम स्वास्थ्य सम्बन्धी सुधारकों में माना है।

फार्मेल्डीहाइड अनेक कृमियों, उदाहरणार्थ- बैसिलस सबटिलिस, बैसिलस कोलाईप काम्युनिस, बैसिलस एन्थ्रेसिस आदि को नष्ट करता है। सर्वप्रथम कोच ने ह सिद्ध किया था कि बैसिलस एन्थ्रेसिस कृमि एन्थ्रैक्स नाम व्याधि फैलाता है। इस रोग से प्रायः भेड़ आदि पशु ही ग्रस्त होते हैं, किन्तु कभी-कभी यह व्याधि मनुष्यों को भी लग जाती है। इसके द्वारा बनाये गये बीजाणु (स्पोर) घास पर कई-कई दिन तक भी बने रह जाते हैं। इससे बैसिलस डिप्थीरिया तथा स्ट्रेप्टोकोकस पायोंजिनस ऑरियस आदि रोगकीट नष्ट हो जाते हैं इसका पाँच प्रतिशत घोल एन्थ्रैक्स के बीजाणुओं को एक से दो घण्टे में नष्ट कर देता है। इसका ४० प्रतिशत घोल १९° सेल्सियस पर बैसिलस कोलाई, स्पाइलि कोलेरो, माइक्रो कोकस प्रोडिज्योसस तथा बैसिलस टाईफोसस (यह टाफाइड बुखार पैदा करता है) को केवल दस मिनट मे; स्टैप्टोकोकस पायोंजिनस ऑरियस को वीस मिनट में तथा बैसिलस पायोसयानिस को आधे घण्टे में नष्ट कर देता है।

यज्ञ में फार्मेल्डीहाइड के अतिरिक्त ऐसीटऐल्डिहाइड, पाइरूविक ऐल्डिहाइड, प्रोपिऑनिक ऐल्डिहाइड तथा फरफ्यूरल आदि भी उत्पन्न होते हैं। ये भी कुछ अंश तक रोगाणुनाशक माने गया हैं, परन्तु इनकी कृमिनाशक शक्ति फार्मेल्डीहाइड की अपेक्षा कम है, तो भी वायु को शुद्ध करने में ये भी अपना योग देते ही हैं।

एल्कोहॉल

हवन से मेथिल एल्कोहॉल, एथिल एल्कोहॉल, एलिल एल्कोहॉल, प्रोपिल एल्कोहॉल तथा ऐमिल एल्कोहॉल आदि भी उत्पन्न होते हैं। यद्यपि ऐलिल एल्कोहॉल तथा ब्युटिल एल्कोहॉल आदि में भी कुछ रोगाणुनाशक शक्ति है, परन्तु इनका इस क्षेत्र में कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

वस्तुतः एल्कोहॉल रासायनिक परिवर्तन के अन्तिम पदार्थ नहीं अपितु, यह प्रायः क्रिया के मध्य में बनने वाले पदार्थ हैं। अतः ऑक्सीकरण आदि पर ऐल्डीहाइड व अम्ल आदि बनाते रहते हैं; यही इनका सबसे बड़ा लाभ है, क्योंकि इनके द्वारा उत्पन्न होने वाले पदार्थ वहुत महत्त्वपूर्ण कृमिनाशक हैं।

अम्ल

अग्निहोत्र के समय भिन्न-भिन्न रासायनि क्रियाओं के द्वारा फार्मिक अम्ल, ऐसीटिक अम्ल, पाइरोलिग्नियस अम्ल, प्रोपिऑनिक अम्ल तथा वैलोरिक अम्ल आदि उत्पन्न होते रहते हैं। घी के अमलें का आगे ऑक्सीकरण हो जाता है।

इनमें फार्मिक ऐसिड कृमिनाशक हैं। यह वायु की शुद्धि करता है। बैसिलस टाईफोसस इसकी विद्यमानता में जीवित नहीं रह सकता। इसका प्रयोग फलों को बिगड़ने से वचाने के लिए किया जाता है।

व्याधियाँ वनस्पतियों को भी ग्रस देती हैं, अतः उपज को बढ़ाने के लिए फसल को बीमारी से बचाना अत्यावश्यक है। इस हेतु व्याधिग्रस्त फसलों पर नाना प्रकार की औषधियाँ छिड़की जाती हैं, पर्याप्त धन व्यय किया जाता है, किन्तु यज्ञ के द्वारा यह व्यय रोका जा सकता है। दूषित वर्षा तथा अपवित्र वायु के कारण पौधों को दूषित भोजन मिलता है, जिससे फसल पर कुप्रभाव पड़ता है। यज्ञ-धूम्र सर्वत्र फैलकर वायुमण्डल को रोगाणुरहित कर देता है। अग्निहोत्र द्वारा वायु और जल की शुद्धि हो जाने से उत्तम अन्नों की उत्पत्ति होती है। इसीलिए कहा है-

देवो वनस्पतिर्जुषाता हविर्होतर्यज ॥

-यजुः० २१।४६

तू यज्ञ कर ताकि वनस्पतियाँ हवि ग्रहण करें।

मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा नवस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः सवाहौषधीभ्यः स्वहा। -यजुः० २२।२८

मूल, शाखा, वनस्पति, फल, औषधि को स्वस्थ रखने के लिए स्वाहापूव४क यज्ञ करो।

यज्ञ के धुएँ में ऐसीटिक ऐसिड होता है। यह अम्ल पौधे के लिए हितकर है। इसके द्वारा वनस्पति जगत् में रोग फैलाने वाले कीट मर जाते हैं। इसका ५ प्रतिशत घोल पाँच मिनट में बैसिलस कोलाई को समाप्त कर देता है। इसकी विद्यमानता में स्पाइलिस कोलेरी भी नहीं पनप सकता।

प्रोपिऑनिक अम्ल बैसिलस टिलिस को मार देता है। शेष अम्ल कमजोर कृमिनाशक हैं, परन्तु वे भी कुछ रोगकीटों पर अपना प्रभाव रखते हैं, अतः इनकी विद्यमानता भी लाभ्रपद है।

सौरभिक पदार्थ

कपूर महत्त्वपूर्ण सौरभिक पदार्थ है। कम तापांश पर यह एक साधारण कृमिरोधक है, किन्तु अधिक तापांश (१००° सेलिस्यस से ऊपर) पर यह अच्छा कृमिनाशक माना गया है, अतः यज्ञ में उत्पन्न होने वाला कपूर का

धूम्र कृमिनाशक है। कपूर के जलने पर सीनिओल भी बनता है। यह भी कृमिनाशक है। ये पदार्थ कृमियों को भले ही मार न सकें, पर उनकी वृद्धि को अवश्य रोक देते हैं।

हवन से कई प्रकार के सौरभिक पदार्थ बनते है। हाइड्रोकार्बनों में नेपथीलीन अधिक उपयोगी है। वह कपड़ों में कीड़े नहीं लगने देती है। इसीलिए इसकी गोलियाँ कपड़ों में रक्खी जाती हैं।

फीनोल अच्छा कृमिरोधक है। लिस्टर के युग (१८६७ ई. के लगभग) में इसका बहुत प्रयोग किया जाता था, परन्तु आजकल बेहतर पदार्थ खोज लिए गए हैं, अतः इसका प्रयोग कम हो गया है, तो भी इसके द्वारा कमरों, स्नानागारों शौचालयों, नालियों तथा हैजाग्रस्त स्थानों की शुद्धि अब भी की जाती है। हवन से बनने वाले एनेथोल, क्रिसोल, कार्वाक्रॉल, सैफ्रोल तथा थाइमोल आदि भी फीनोल जाति के पदार्थ हैं। थाइमोल फीनोल की अपेक्षा पच्चीस गुणा शक्तिशाली अपवित्रता एवं कृमिनाशक है। इसका एल्कोहॉल में १० प्रतिशत घोल कवकनाशी तथा पराश्रयी जीवनाशक है। क्रिसोल फीनोल की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली कृमिनाशक है। यूँ भी यह कम विषैला है; यह जूँ को मार देता है। मैन्थोल भी जूँ को परे भगा देता है तथा कपूर से अच्छा अपवित्रता-नाश है। इन सभी पदार्थों में गन्दगी से उत्पन्न होने वाले कीड़े-मकोड़े, मच्छर, पिस्सू आदि को मारने या भगाने का गुण भी है। कपूर, गूगल, चन्दन, केसर, लोबान, बालछड़, अगर, तगर, नीम के पत्ते आदि कृमिनाशक हैं। इनका धुआँ स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है। गिलोय, नीम के पत्ते तथा घृत के जलाने से जो घूम बनता है, वह मलेरिया बुखार में बहुत लाभदायक है। गिलोय, नीम के पत्ते और शक्कर को अङ्गारों पर जलाकर धूनी देने से जुकाम ठीक हो जाता है। जौ का धुआँ मच्छरों को दूर भगाता है। चावल और खीलों को जलाने से छाती के रोग नष्ट करने में सहायता मिलती है।

अग्निहोत्र के द्वारा लौंग, इलायची, देवदार, चन्दन, यूकेलिप्टस आदि कई प्रकार के तेल बनाये जाते हैं। ये तेल कई यौगिक पदार्थों का मिश्रण होते हैं। ये उदाहरणार्थ-यूकोलिप्टस का तेल शरीर पर लगा लेने से मच्छर नहीं काटते, कोलाई वैसिलस, टेट्राजिन वैसिली, वर्गुले वैसिलस, स्ट्रोप्टोकोकस आदि रोगाणु भी मर जाते हैं। खुशबूदार तेल वायु को केवल सुगन्धित ही नहीं करते अपितु उनमें कृमिनाशक शक्ति भी होती है। इनकी गन्ध से जूँ, पिस्सू आदि मर जाते हैं। सम्भवतः इसी कारण कई रोग उन क्षेत्रों में नहीं होते जहाँ फूल लगे हुए हों। हैम्पटन का मत है कि "इन रोगनिरोधियों का वास्तविक लाभ इन कीटाणुओं को मारने में नहीं है, अपितु उन्हें लेजाने वाले खटमल तथा जू आदि को परे रखने में है।"[१२]

यज्ञ के द्वारा रगों का क्षय सम्भव है। आज शारीरिक शक्ति का ह्रास होता जा रहा है, कद घट रहा है, नित्य नई-नई व्याधियाँ उत्पन्न हो रही हैं। यदि अग्निहोत्र की ओर ध्यान दिया जाए तो न केवल व्याधियाँ नष्ट हो जाएँ, अपितु राष्ट्र में आध्यात्मिक वातावरण भी बन जाए, जिसके द्वारा चारित्रिक उत्थान का स्वप्न भी साकार हो सकेगा।

द्रष्टव्य :

१) ऋषि दयानन्द सरस्वती, यजुर्वे द भापाभाष्य, दयानन्द संस्थान, दिल्ली
२) उपरिलिखित, तुलना : ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, वेदविषयविचार, पृष्ठ-४१
३) ऋषि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास
४) तुलना : गोपथब्राह्मण (२ ।१ ।१९) **अथो भैषज्यज्ञा व एते सच्चतुर्मास्यानि। तस्मादृतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते। ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते ॥**
५) रामनाथ वेदालङ्गार, आर्ष ज्योति, समर्पण शोध संस्थान, साहिबाबाद, १९९१, पृष्ठ-२६२
६) संद्धर्मप्रचारक, २ फाल्गुन, संवत् १९६८
७) भारत सुदशा प्रवर्त्तक, जून १९०३
८) भारत सुदशा प्रवर्त्तक, जून १९०३
९) लीडर (इलाहाबाद से प्रकाशित समाचारपत्र), ६ अप्रैल, १९५५
१०) डॉक्टर फुन्दनलाल अग्निहोत्री, यज्ञ-चिकित्सा (१९४९); हवन-यज्ञ द्वारा क्षयरोग की चिकित्सा (१९४६)
११) Akhil Ranjan Majumdar, Modern Pharmacology and Therapeutic Guide, Calcutta Scientific Publications (1957)
१२) Hamton; The Scent of Flowers and Leaves

...पेज ९ का शेष

करेंगे। इस दिशा में सरकारों की जनविरोधी नीति का भी पुरजोर विरोध करेंगे।

धर्म के नाम पर बढ़ते हुए धार्मिक जुनून, धर्मान्धता, अंधविश्वास, रूढ़िवाद, अर्थहीन, कर्मकांड, चमत्कार, महिमा मंडन से अपने व दूसरों को बचाने का प्रयास करेंगे। मेरा मनना है इन सब चीजों से धार्मिक कट्टरवाद और आतंकवाद बढ़ सकता है। यह जानते हुए धर्म के मामले में विचार मंथन की संस्कृति एवं वैज्ञानिक सोच को जीवन में उतारने के प्राथमिकता देंगे।

हम लोग बाल श्रम, बंधुआ मजदूरी तथा अन्य प्रकार के मानवीय अत्याचारों का विरोध करते रहे हैं और करते रहेंगे। बच्चों की बेहतर शिक्षा मिले, इसकी आवाज उठाएंगे। साथ ही पशु-पक्षियों के प्रति करुणा को बढावा देंगे। हम लोगों को समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार के उन्मूलन के लिए कार्य करने का संकल्प लेंगे। अपनी मातृभाषा तथा राष्ट्रभाषा के साथ-साथ अन्य सभी भाषाओं का सम्मान करना होगा। जनमानस पर अंग्रेजी अथवा किसी विदेशी भाषा के थोपे जाने का विरोध करना होगा।

मेरा मत है कि विज्ञान और टेक्नोलॉजी के विकास के बावजूद आज साम्प्रदायिकता और आतंकवाद भी दुनियां में बढ़ रहे हैं। क्या धार्मिक-आध्यात्मिक नेता इसी जिम्मेदारी लेने के लिए तैयार हैं। स्थिति बहुत विकट है। सभी प्रकार के पारंपरिक हथियारों से प्रति वर्ष जितने लोग मारे जा रहे हैं, उतने ही लोग शराब, तंबाकू (सिगरेट) तथा नशीली दवा के सेवन से मर रहे हैं। देखिए कि नशा करने वाला व्यक्ति किसी न किसी धार्मिक सामप्रदाय से जुड़ा होता है। अत्याचार और शोषण खासकर विकासशील देशों में गुलामी की प्रथा के नए अवतार के रूप में फल-फूल रहा है। यदि आंकड़ों पर जाएं तो हमारे देश में २० वर्षों में लगभग दो करोड़ से अधिक कन्या भ्रूण हत्या हुई हैं। अभी भी यह बदस्तूर जारी है जो समाज के माथे पर पैशाचिक कलंक है। एक ओर पत्थर की देवी मां, दूर्गा, भवानी की पूजा और दूसरी ओर ईश्वरीय करुणा की प्रति मूर्ति। यह किसलव से कोमल कन्याओं के करुणा की प्रति मूर्ति। यह किसलव से कोमल कन्याओं के करुण क्रंदन का क्रूर उपहास है। पृथ्वी को पर्यावरण संकट से बचाने का सबसे आवश्यक कदम है। मांसाहार उद्योग व्यापार पर तत्काल पाबंदी, जिसके अंतर्गत प्रतिदिन १०० करोड़ पशु-पक्षियों की निर्मम हत्या की जा रही है। इन सब पर अमल कर हम लोग समतामूलक समाज की स्थापना कर सकते हैं।

मानव जीवन हेतु पेड़-पौधों का महत्त्व

मानव सभ्यता के विकास में पेड़ों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। पेड़ों के अस्तित्व पर ही मनुष्य एवं अन्य प्राणियों का जीवन आधारित है। पेड़ एक ऐसी प्राकृतिक सम्पदा है जिसका यदि विनाश होता है तो मनुष्य जीवन की सुखद संभावनाओं की आशा नहीं की जा सकती है। आँकड़ों के आईने में देखें तो जब से मानव सभ्यता का विकास क्रम प्रारम्भ हुआ है, तब से लेकर अब तक वृक्षों की संख्या में ४६ प्रतिशत तक की कमी आयी है। एक अध्ययन के निष्कर्ष से पता चलता है कि विश्व में करीब तीन लाख करोड़ पेड़ हैं, परन्तु इनकी संख्या अब लगातार सिमटती चली जा रही है।

सेटेलाइट इमेजरी अर्थात् उपग्रह के माध्यम से लिए गये चित्रों के माध्यम से जो पड़ों का आँकड़ा पता चलता है, उसे प्रतिष्ठि पत्रिका **'नेचर'** में प्रकाशित किया गया है। उसके अनुसार दुनिया में अभी भी ऐसे दुर्गम स्थलों पर जंगल का विस्तर है, जहाँ मानव का पहुँचना अत्यन्त दुष्कर है क्योंकि इन जंगलों में एक तो सुगम रास्ता नहीं है, दूसरे खतरनाक वन्यजीवों की मौजूदगी है। अतः इनका जलवायु के लिए प्रभाव तो है परन्तु ये मनुष्यों के लिए कम प्रभावी हैं अर्थात् जहाँ पर पेड़ होने चाहिए, वहाँ कम हैं या नहीं के बराबर हैं। 'नेचर' के अनुसार पेड़ो की उच्च सघनता रूस, स्कैंडीनेविया और उत्तरीं कोरिया के उप-आर्कटिका क्षेत्रों में पायी गई है।

विश्व के सघन वनों में २४ प्रतिशत पेड़ हैं। पृथ्वी पर उपस्थित ४३ प्रतिशत अर्थात् लगभग १.४ लाख करोड़ पेड़ अण्णकटिबंधीय वनों में है। इस संबंध में चिन्ताजनक पहलू यह है कि बनों की या पेड़ों की घटती दर वी इन्हीं गलों में सबसे अधिक है। इसी प्रकार २२ प्रतिशत पेड़ शीतोष्ण क्षेत्रों में हैं। एक और सर्वेक्षण के अनुसार, विश्व के सभी सघन वनों की संख्या ४ लाख से भी अधिक है। मानवीय गतिविधियों एवं उनके जंगलों में हस्तक्षेप के कारण पेड़ों की संख्या में निरन्तर गिरावट आ रही है। जिन वन क्षेत्रों में मनुष्य की आबादी बढ़ी है, उन क्षेत्रों में पेड़ों का धनत्व भी तेजी से घटा है। वनों की कटाई, भूमि के उपयोग में बदलाव, वन प्रबंधन और मानवीय हस्तक्षेप के कारण विश्व में लाखों पेड़ प्रतिवर्ष कम हो रहे हैं। अपने देश समेत समस्त विश्व में अनियंत्रित औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, बड़े बाँध एवं राजमार्गों के निर्माण से जंगल समाप्त हो रहे हैं।

ऐसे समय में जब विश्व के सभी पयावरणविद् और वैज्ञानिक, जलवायु संकट के खतरे से मानव को लगातार आगाह कर रहे हैं तब यह पहलू चिन्ताजनक हो जाता है कि उनकी चेतावनी को दरकिनार करके पेड़ों को काटने के दुष्कृत्य में कोई कमी नहीं आयी है। विश्व में पेड़ों की घटती संख्या चिन्ता का विषय है। यह कमी भूमंडलीय आर्थिक उदारवाद के बाद आयी है, जब विकास के नाम पर जंगलों का सफाया होता चला गया। पिछले १५ वर्षों में ब्राजील में १६ हजार वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में वनों का विनाश किया गया है।

एक सर्वे के अनुसार भारत में १९८१ के बीच प्रतिवर्ष वनों की विनाश दर ०.६ प्रतिशत रही है। यह आँकड़ा विश्व के वनों की विनाश दर की तुलना में अधिक है अर्थात् हम जंगलों के विनाश में बहुत आगे बढ़ चुके हैं। हमारे देश में इस प्रकार वनों का विनाश होना एक अत्यन्त चिंतनीय बात है, क्योंकि अपनी संस्कृति में वनों को देवता माना जाता है और पेड़ों को पूजनीय। हम पेड़ों को इसलिए देवता मानते हैं क्योंकि उनसे हमें फल, ईधन और इमारती लकड़ी प्राप्त होती है। देने वाले को ही तो देवता कहता जाता है। इसके बावजूद वनों का विनाश एवं पेड़ों की कटाई -अत्यन्त चिंतनीय विपय है। हम अपने स्वार्थ में इतने अंधे हो गये हैं कि इन जीवनदायी पेड़ों को काटते ही चले जा रहे हैं।

आँकड़ों के अनुसार विश्व में प्रतिवर्ष ७० लाख हेक्टेयर की गति से वन लुप्त हो रहे हैं। वनों के विनाश की बढ़ी गति से २०१० से २०१४ के ४ वर्षों में ९ प्रतिशत वन क्षेत्र विलुप्त हो चुके हैं। २०४० तक १७ से ३५ प्रतिशत सघन वन मिट जाएंगे। उस समय तक स्थिति और विकराल हो जाएगी। २० से ७५ दुर्लभ पेड़ों की प्रजातियाँ प्रतिदिन नष्ट होने लगेंगी। इसके परिणामस्वरूप आगामी १५ वर्षों में वृक्षों की १५ प्रतिशत प्रजातियाँ विलुप्त हो जाएंगी। इनकी विलुप्ति का प्रभाव धीमा एवं गहरा होता है क्योंकि प्रकृति में सहयोग एवं सहकार की महत्त्वपूर्ण व्यवस्था है। एक पेड़ दूसरे पेड़ को विकसित करने में सहयोग प्रदान करता है। पेड़ों की विलुप्ति मानव जीवन के लिए अत्यन्त घातक है।

भारतीय अनुसंधान परिषद् के आकलन के अनुसार उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में एक हेक्टेयर के वन से १.४१ लाख रूपये का लाभ होता हैं इसके साथ ही ५० वर्षों में एक वृक्ष १५.७० लाख रूपये की लागत का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लाभ देता है। पेड़ लगभग ३ लाख रूपये मूल्य की भूमि की नमी बनाए रखता है। २.५ लाख रूपये मूल्य की ऑक्सीजन और २ लाख रूपये मूल्य के बराबर प्रोटीन का संरक्षण करता है। वृक्ष की उच्च उपयोगिता में वह ५ लाख रूपये मूल्य के समतुल्य वायु व जल प्रदूषण नियंत्रण और २.५ लाखरूपये मूल्य के बराबर की भगीदारी पक्षियों, जीव-जन्तुओं व कीट-पतंगो के आश्रयस्थल को उपलब्ध कराने के रूप में करता है। वृक्षों की इन्हीं मूल्यवान उपयोगिताओं को ध्यान में रखकर हमारे ऋषि-मुनियों ने इन्हें देवतुल्य माना है और इनके महत्त्व को पूजा से जोड़करसंरक्षण के अनूठे व दीर्घकालिक उपाय किये परन्तु विकास के नाम पर मनुष्य के अहंकार व क्षुद्र स्वार्थ ने जनजीवन के प्रकृति से गहरे आत्मीय संबंध को नकार दिया है और इसी का परिणाम है कि प्रकृति हमसे विक्षुब्ध हो गई है

पेड़ों के महत्व को और भी अनेक रूपों में देखकर क्रियात्मक अध्ययन किया जाता है। पेड़ों का तुलना अब शीतलता पहुँचाने वाले नियुक्त उपकरणों के साथ भी की जाती है। एक सर्वेक्षण के अनुसार एक स्वस्थ वृक्ष जो शीतलता देता है, वह १० वातानुकूलित संयंत्रों के २० घंटे लगातार चलने के बराबर होती है। घरों के आस-पास लगे पेड़ भी वातावरण को शीतलता प्रदान करते हैं। घरों के पास लगे पेड़, वातानुकूलन की आवश्यकताओं को ३० प्रतिशत तक घटा देते हैं। इससे २० से ३० प्रतिशत तक बिजली की बचत होती है। एक एकड़ क्षेत्र में लगे वन, छह टन कार्बन-डाइऑक्साइड अवशोपित करते हैं और इसके ठीक विपरीत चार टन ऑक्सीजन उत्पन्न करते हैं जो १८ व्यक्तियों की वार्षिक आ के बराबर होती है।

प्रदूषणनाशक वृक्ष प्रदूषण को नष्ट करते हैं और पर्यावरण को स्वच्छ, साफ एवं समृद्ध करते हैं। पीपल जैसे वृक्षों में धुआँ तथा धूल को सोख्ने की असीमित शक्ति होती है। पीपल तो ४.१५ प्रतिशत तक धुआँ सोख लेता है, इसलिए तो इसे देववृक्ष कहते हैं। इसी प्रकार तुलसी हमें शुद्ध वायु प्रदान करती है तथा घातक कृमि, कीटों का नष्ट करती है। यह हमें दीर्घायु प्रदान करती है। इसलिए कहते हैं -

तुलसीकाननं चैव गृहं यस्यावतिष्ठते।
तद्गृहं तीर्थभूसमाह नायन्ति यमर्किकरा ॥

अर्थात् तुलसी घर को तीर्थ बना देती है, वातावरण को पवित्र एवं दिव्य बनाती है। इस पवित्रता एवं दिव्यता के आलोक-प्रकाश में मृत्यु के दूत यहाँ नहीं पहुँच पाते हैं। अतः हमें वृक्षों को पूजनीय मानकर संरक्षित एवं संवर्द्धित करना चाहिए। वृक्ष हमारे लिए जीवन तत्त्वों का सृजन करते हैं, इसलिए हमें भी वृक्षों के विकास में सहायक होना चाहिए तथा उनके सेवा, संरक्षण एवं संवर्द्धन में हमारा यथेष्ट योगदान होना चाहिए।

నిజాం, కాటన్, కేసీఆర్

-తెలకపల్లి రవి

'చుట్టుముట్టు సూర్యాపేట/ నట్టనడుమ నల్లగొండ/ నీవుండే హైద్రాబాదు/ దాని పక్క గోలుకొండ/ గోల్కొండ ఖిల్లా కింద/ గోల్కొండ ఖిల్లా కింద/ నీ గోరికడ్తం కొడకో/ నైజాము సర్కరోడా' ఎవరు ఎక్కడ పాడినా ఉర్రూతలూపే పాట. ...అయితే మహత్తర తెలంగాణ సాయుధ పోరాటం తర్వాత అరవై ఏళ్లకు తెలంగాణ పేరిట నాయకులొకరు వచ్చి ఆ నిజాం సమాధికి మొకరిల్లుతారని ఆ వీరులూ గాయకులూ కలలో కూడా అనుకుని వుండరు. .... (నిజమూ నిజామూ.. గమనం, నవంబరు 28, 2007)

ఇలా ఈ శీర్షికలో రాసిన తర్వాత కొన్నాళ్లకు 2008 మార్చి మొదటివారంలో టీఆర్ఎస్ ఎమ్మెల్యేలు రాజీనామాలు చేశారు. కేసీఆర్‌తో ఒక టీవీ ఛానల్ చర్చలో నేనూ, ప్రొఫెసర్ నాగేశ్వర్ పాల్గొన్నాం. తక్షణాంశాల తర్వాత నేనో ప్రశ్న వేశాను. నిజాం నిరంకుశ రాజ్యంపై పోరాటం తెలంగాణ చారిత్రిక వారసత్వమైతే మీరు ఆయననే కీర్తిస్తున్నారే అని అడిగాను. చనిపోయిన వాళ్లను గౌరవించడం సంప్రదాయం గనక వెళ్లాను అని ఆయన జవాబు చెప్పారు. వ్యక్తిగా గౌరవించడం వేరు మీరు తెలంగాణ ఉద్యమ నేతగా నిజాం పాలనను పొగడ్డం వేరు కదా అన్నాను. గోదావరి ఆనకట్ట కట్టినందుకు ఆర్థర్ కాటన్‌ను పూజిస్తారు కదా అలాగే మాకు నిజాం సాగర్ వంటివి కట్టించినందుకు నిజాంను పూజిస్తాం అని ఆయన వాదన తెచ్చారు. ధవళేశ్వరం ఆనకట్ట కట్టినందుకు ప్రజలు కాటన్‌ను పూజించే మాట నిజమే గాని విక్టోరియా మహారాణిని పూజించడం లేదు సార్.. మీరైనా ఆనకట్ట కట్టిన ఇంజనీర్‌ను గౌరవించడం వేరు నిజాం పాలనను కీర్తించడంవేరు అని నేనన్నాను. పాలకుడన్నాక మంచి వుంటుంది చెడు వుంటుంది అంటూ సమర్థించుకునే ప్రయత్నం చేశారు. ఈ వాదన ఆపడం కోసం నాగేశ్వర్ 'పోనీ ప్లస్‌లు ఎక్కువో మైనస్‌లు ఎక్కువో చెప్పుకుంటే సరిపోతుంది కదా' అని సూచించారు. 'ఆలోచించగల వారెవరైనా మైనస్‌లే ఎక్కువ అంటారు' అని కేసీఆర్ వ్యాఖ్యానించడంతో ముగించాము.

విశేషమేమంటే పదేళ్ల కిందట నేను వేసిన ఆ ప్రశ్న వెంటాడుతూనే వుంది. 'మా సీఎం గారు మిమ్మల్ని యాద్ చేసుకున్నారు' అని టీఆర్ఎస్ మిత్రులు అప్పుడప్పుడూ నాతో చెబుతుంటారు. ఉద్యమ కాలంలోనే ఒక పుస్తకావిష్కరణ సభలో కేసీఆర్ ఈ ప్రశ్న గురించి మాట్లాడగా మలిముద్రణలో జోడించారు. ముఖ్యమంత్రిగా ఎగ్జిబిషన్ సొసైటీ సభలోనూ చెప్పడం విన్నాను. ఇటీవలే టీఆర్ఎస్ విద్యార్థి సమావేశంలోనూ వాదనా పటిమకు ఉదాహరణగా కాటన్ వైనాన్ని చెప్పారని ఒక ఛైర్మన్ నాకు చెప్పారు. నా ప్రశ్న గుర్తుంచుకోవడం సంతోషమే గాని కాటన్ వాదనతో నేను నిర్త్తరుడ్డైనట్టు చెప్పడంలో వాస్తవం లేదు. పైగా అప్పుడు నిజాంలో మైనస్‌లు ఎక్కువన్న కేసీఆర్ ఇప్పుడు చిన్న చిన్న తప్పులు జరగివుంజొచ్చని సరిపెడుతున్నారు. మొన్న నవంబర్ 9న శాసనసభలో తానే నిజాం చర్చ తీసుకొచ్చి టీవీ చర్చలో 'ఒక ఆంధ్ర విలేకరి' తనను ఈ ప్రశ్న అడిగాడటూ కాటన్ కథనే చెప్పారు. మానవ ప్రస్థానంలో ఎవరు ఎక్కడ మొదలై ఎక్కడకు వస్తారో గాని నా పేరు 'తెలకపల్లి' రవి అనీ, నాటి తెలంగాణ పోరాటాన్ని బలపల్లి నిజాం నిషేధానికి గురైన ప్రజాశక్తి సంపాదకత్వం తదితర భావాల నేపథ్యంతో కు మత ప్రాంతీయ తేడాలు తెలియవనీ చెప్పగలను.

వ్యక్తిగతాలు వదిలేసి ప్రధాన చర్చకు వస్తే నిజాంతో కాటన్‌కు పోలికే అసందర్భం, అచారిత్రికం. కాటన్ వలస పాలనలో ఉద్యోగిగా వచ్చిన సైనిక ఇంజనీర్. ఘోరమైన కరువు కాటకాలతో చలించిపోయి బ్రిటిష్ పార్లమెంటు పట్టించుకోకపోయినా వెంటబడి 1852 నాటికి నిర్మాణం పూర్తి చేశారు. వారిని ఒప్పించడం కోసం ఆయన కరువు వల్ల పన్నుల నష్టం ఎంత వస్తుందో పండితే తమకు కలిగే లాభ ఏమిటో కూడా నివేదించే ప్రయత్నం చేశారు. (మరీ ఎక్కువగా భారతీయుల పక్షం వహిస్తున్నారని ఆయనను అభిశంసించే ప్రక్రియ కూడా ఒక దశలో నడిచిందట) ఇవన్నీ చేసినందుకు కాటన్‌ను తలుచుకుంటున్నారే గాని పైనున్న తెల్లదొరలను కొలవడం లేదు. ఆ గోదావరి జిల్లాలో స్వాతంత్ర్య చైతన్యం పెల్లుబికి అల్లూరి సీతారామరాజు సరిగ్గా అదే ఏజన్సీ ప్రాంతం నుంచి ప్రభవించారు. అసలు తెలుగు ప్రజలంతా మొదట నిజాం పాలితులే. 1724-1748 నాటి తొలి నిజాం ఉల్ ముల్క్ నుంచి రెండు వందల ఏళ్ల తర్వాత ఏడవ ఆఖరి నిజాం ఉస్మాన్ అలీ ఖాన్ వరకూ క్రమక్రమంగా ఆయా ప్రాంతాలను తెల్లవారికి ధారాదత్తం చేస్తూ వచ్చారు. అదే పాలకులు తమ ఏలుబడిలోని అభాగ్య ప్రజానీకాన్ని మాత్రం ఆత్మగౌరవం హరించే వెట్టిచాకిరీకి ఆకలి దప్పులకు దొరల పీడనకు గురి చేశారని చరిత్ర చెబుతుంది. ఇవన్నీ 'చిన్న చిన్న తప్పులు'గా చూసే పెద్ద నాయకులకు మనం ఏమీ చెప్పలేము.

ఓ నిజాము పిశాచమా ! కానరాడు/ నిన్నుబోలిన రాజు మాకెన్నడేని/ తీగలను తెంచి అగ్నిలోదింపి నావు/ నా తెలంగాణ కోటి రతనాల వీణ అన్నారు దాశరథి. ఇందులో ఆఖరి చరణాన్ని తీసుకుని మిగిలినవన్నీ మింగేద్దామా ? పల్లెలను కొల్లగొట్టి హైదరాబాదులో కూచున్నావని ఆక్షేపిస్తారు కాళోజీ. నిజాం ఆస్తి సర్ఫేఖాస్ లక్షల ఎకరాల్లో వుండగా నగదు రూపంలో వచ్చే భరణం మరో రెండు కోట్లు. ఆయన అతి సంపన్న పాలకుడే గాని ప్రజలు గర్భదారిద్ర్యంలో మగ్గారు. నాటి పోరాట యోధులపై దాడులు చేసిన రజాకార్ నాయకులు స్థాపించిన మజ్లిస్ పార్టీతో టీఆర్ఎస్‌కు రాజకీయ స్నేహం వుండొచ్చు గాని అందుకోసం చరిత్రను తారుమారు చేయనవసరం లేదు. వాస్తవానికి నాటి ఆంధ్ర ప్రాంతంలోనూ బెంగాల్ కేరళ త్రిపుర పంజాబ్ వంటి చోట్ల కూడా భూస్వామ్య పాలకులపై మతప్రసక్తి లేకుండా పోరాటాలు జరిగాయి. ఈ పీడనలను కాంగ్రెస్ ఉపేక్షిస్తే ప్రధానంగా కమ్యూనిస్టులు వాటిని నడిపించారన్నది చరిత్ర. సంగంగా పేరొందిన నిజామాంధ్ర మహాసభ ఆ చరిత్రలో భాగమే తప్ప ప్రాంతీయ కోణాలు లేవు.

నిజాం సాగర్ 1923లో కట్టేముందు ఎలాటి కరువులు ఆకలి బాధలు వుండేవో చరిత్ర చెబుతూనే వుంది. ఆ నిర్మాణానికి బాధ్యత వహించిన ఇంజనీర్ అలీ నవాబ్ జంగ్ బహుదూర్ చిత్ర పటం కూడా నేను ధవళేశ్వరం

మ్యూజియంలో చూశాను. నిపుణులను గౌరవించడం వేరు నిరంకుశులను కీర్తించడం వేరు. నిజా పాలన ముగిసే నాటికి దక్షిణ తెలంగాణలో 8.42 శాతం, ఉత్తర తెలంగాణలో 10.97 శాతం మాత్రమే నీటి వసతి కలిగివుంది. తన డ్రైవర్‌కు సమస్య వస్తే నిజాం స్వంత సొమ్ముతో నిమ్స్ స్థాపించారని పదే పదే కథ చెబుతున్నారు గాని ఉద్యాసన తర్వాత పదేళ్లకు కూడా వైద్య సదుపాయాలు నా మమాత్రమే. ఉత్తర త్తర తెలంగాణలో లక్షకు పడకల సంక్య 16 మాత్రమే, దక్షిణ భాగంలో 78 వుంది. ఇది నాటి రాష్ట్ర సగటు కన్నా తక్కువ. నిజాం కట్టిన భవనాలలో ప్రజా వ్యవస్థలు ఏర్పాటు చేసుకున్నది ప్రజాస్వామ్య ఫలితం తప్ప దయా దాక్షిణ్యం కాదు. ఏడో నిజాం చాలా రంగాలలో అధ్యయనానికి కమిటీలు వేశారు గాని వాటి నివేదికలు ఎన్నడూ చిత్తశుద్ధితో అమలు చేయలేదని, పైగా ఆయన మత రాజకీయ విధానాలు అపఖ్యాతి తెచ్చాయని ప్రొఫెసర్ వైకుంఠం సోదాహరణంగా రాశారు. నాటి గోల్కొండ పత్రికల నివేదికలు సంపాదకీయాలు ఇందుకు కొన్ని ఆధారాలుగా పేర్కొన్నారు. బ్రిటీష్‌వారికి లొంగి పోయి నచ్చిన దివానును కూడా నియమించు కోలేని స్థితిలో నిజాం ఎన్ని పిల్లి మొగ్గలు వేశారో సరోజా రేగాని రాశారు. ఆధ్రప్రదేశ్ చరిత్ర కాంగ్రెస్ వారి సంపుటాలూ నాటి పరిస్థితిని సమగ్రంగా చెబుతాయి.

మత సామరస్యం వేరు, సమస్త మత పాచికల ప్రయోగం వేరు. ఒక ముస్లిం రాజు గనక బ్రిటీష్ వారిపై పోరాడిన టిప్పు సుల్తాన్‌ను కూడా వ్యతిరేకించే బీజేపీ అదే ధోరణిలో నిజాం వ్యతిరేకతను రాజకీయ ఆయుధంగా చేసుకుంటే ఎవరూ ఆమోదించరు. నిజాంను చర్చలోకి తెచ్చింది టీఆర్ఎస్ అధినేత తప్ప ఇతరులు కాదు. కాని ఆ నిరంకుశత్వంపై పోరాట కేతనమెత్తింది తెలంగాణ ప్రజలేనన్నది అంతకన్నా పెద్ద నిజం. ఆ పోరాటం ఫలితంగా ఆనాటికి దేశంలోనే విప్లవాత్మకమైన కౌలుదారీ చట్టం తెచ్చిన శాసనసభలోనే ఇప్పుడు కౌలుదార్ల ఉనికిని గుర్తించబోమంటూ ముఖ్యమంత్రి మాట్లడ్డం యాదృచ్ఛికం సంగర్షించిన శక్తులలో చరిత్ర పుట్టెను అన్నాడు మహాకవి. అలాటి నిజమైన ప్రజల చరిత్ర పదిలపర్చుకోవడం ముఖ్యం. -ఆంధ్రజ్యోతి పత్రిక

మార్పు.. మూలంలో రావాలి !

-బొర్రా గోవర్ధన్

సమంతుడు శ్రావస్తిలోని ఒక ధనిక కుటుంబానికి చెందిన యువకుడు. అతనికి గృహస్త జీవితం అంతగా ఆనందాన్ని, ఇవ్వలేకపోయింది. భిక్షువుగా మారి, ధ్యాన సాధన చేసి, జ్ఞానాన్ని పొంది ఆనందంగా, గౌరవంగా జీవించాలని అనుకున్నాడు. అనుకున్నదే తడవుగా ఒక భిక్షువు దగ్గరకు వెళ్లి విషయం చెప్పాడు. ఏదో ఒక ఇబ్బంది వచ్చిన సమయంలో భిక్షువుగా మారాలని అనుకోవడం, కొంతకాలం భిక్షువుగా ఉండి, మరలా వెళ్లిపోయి గృహస్తగా జీవించినవారిని ఎందరో ఆ భిక్షువు చూసాడు. ఆ అనుభవంతో సమంతునికి వెంటనే భిక్షుదీక్ష ఇవ్వకుండా -

'నాయనా ! ముందు నీ ఆస్తిని మూడా భగాలుగా చేయి. ఒక భాగం నీ కుటుంబానికి ఇవ్వు. ఒక భాగంతో నవు నీ కుటుంబానికి ఇవ్వు. ఒక భాగంతో నీవు నీ వ్యాపారాల్ని కొనసాగించు. ఒక భాగాన్ని పూర్తిగా దానాలకు ఉపయోగించు. నీకు గౌరవం దక్కుతుంది. ఆనందం కలుగుతుంది' అని చెప్పి పంపాడు. సమంతడు వెళ్లి అలాగే చేశాడు.

మరలా కొన్నాళ్లకు తిరిగి భిక్షువు వద్దకు వచ్చాడు. భిక్షువుకు నమస్కరించి -'భంతే! మీరు చెప్పినట్లే చేశాను. అయినా నాకు శాంతి కలుగలేదు' అని చెప్పాడు.

'నాయనా ! ఈసారి నేను చెప్పిన ఓ ఐదు విషయాల్ని పాటించు. జీవహింస మాను. అబద్ధాలు ఆడకు, పరుల సొమ్ము ఆశించకు. వ్యభిచరించకు. మద్యపానం, మత్తుపదార్థాల జోలికి పోకు - ఈ ఐదింటిని పంచశీల అంటారు. వీటిని పాటించు' అని చెప్పి పంపాడు. ఆ యువకుడు వెళ్లి మరలా కొన్నాళ్ల తర్వాత తిరిగి వచ్చాడు. మరలా ఆ భిక్షువు - 'ఈసారి బుద్ధం శరణం గచ్ఛామి, ధర్మం శరణం గచ్ఛామి, సంఘం శరణం గచ్ఛామి' అనే త్రిరత్నాలన్ని శరుణు వేడు' అని చెప్పి పంపాడు. వెళ్లి, మరలా కొన్నాళ్లకు సమంతుడు తిరిగి వచ్చాడు. ఈసారి మరిన్ని ధర్మకార్యాలు ఆచరించమని చెప్పి పంపాడు.

ఇవి ఏవి సమంతునికి శాంతిని చేకూర్చలేక పోయాయి. ఈసారి వచ్చి -

'భంతే ! మీరు చెప్పినవి ఏవీ నాకు మనోశాంతిని చేకూర్చలేదు. నా చింతలు, దుఃఖం తీర లేదు. శాంతి, ప్రశాంతతలు చేకూరలేదు' అని చెప్పాడు. అతణ్ణి సరైనదారిలో పెట్టడం తన వల్ల కాదని గ్రహించిన ఆ భిక్షువు ఆ యువకుణ్ణి బుద్ధుని దగ్గరకు తీసుకుని పోయి, విషయం అంతా చెప్పాడు.

బుద్ధుడు సమంతునికి ధర్మోపదేశం చేశాడు. మనిషికి మనస్సే మూలం. మన సుఖదుఃఖాలకి, కోర్కెలకి అన్నింటికీ చిత్తమే కేంద్రం. చిత్తాన్ని సంస్కరించకుండా బాహ్య విషయాల విషయంలో ఎంత సాధన చేసినా, ఎన్ని కార్యాలు చేసినా ఉపయోగం లేదని ఆ ప్రబోధం ద్వారా సమంతుడు తెలుసుకున్నాడు. "సుదుద్దసం సునిపుణం యత్థ కామనిపాతినం చిత్తం రక్ఖేథ మేధావీ చిత్త గుత్తం సుఖావహం" అని చెప్పాడు బుద్ధడు.

అంటే - తనకు ఇష్టమైన విషయాల మీదికి వేగంగా పోయి వాలుతుంది చిత్తం. చిత్తాన్ని జాగ్రత్తగా గమనించినా పట్టుకోవడం అంత తేలిక కాదు. తెలివిగలవాడు ముందుగా చిత్తాన్ని మంచి మార్గంలోకి మళ్లించుకుంటాడు. అలాంటి చిత్తమే దుఃఖాన్ని తొలగిస్తుంది అని అర్థం.

మార్పు మూలంలోనే రావాలి. అలాంటి మార్పే సుస్థిరంగా ఉంటుంది. బాహ్య మార్పులు సుస్థిరం కావు. మనం అదుపు చేయాల్సింది కోరికలను కాదు. కోరికలకు మూలమైన చిత్తాన్ని. ఇలా చిత్తాన్ని అదుపు చేయడానికి ఆయన ఆవిష్కరించిందే 'విపశ్యన'. -ఆంధ్రజ్యోతి పత్రిక నుండి

జమాతె ఇస్లామి హింద్ నాయకులు ఆర్య ప్రతినిధి సభలో

జమాతె ఇస్లామి హింద్ నాయకులు ఆర్య ప్రతినిధి సభ మంత్రి గారైన విఠల్‌రావు ఆర్య గారిచే ఇస్లాం, ముహమ్మద్, ఖురాన్ పైన మరియు వైదిక సిద్ధాంతలపైన మాట్లాడుతున్న దృశ్యం.

GLOBAL CHALLENGES FACING HUMANITY

Sustainable Development and Climate Change: How can sustainable development be achieved for all while addressing global climate change?

The World Meteorological Organization reports that the amount of CO_2 in the atmosphere reached a record levels in 2012, or 140% of the pre-industrial level of 280 parts per million. The daily average of atmospheric CO_2 as measured in Hawaii surpassed 400 ppm on May 10, 2013. It was 391.03 ppm in October 2012; 388.92 ppm in October 2011; and 387.15 ppm in October 2010. According to NOAA, 2012 was the hottest year in the U.S. (coterminous 48 states) since record-keeping began in 1895, and the ninth warmest on record globally.

The total human-induced GHG emission is about 49.5 gigatons of CO_2 equivalent per year. Nature absorbs about half of this annually, but that ability is diminishing. To achieve carbon cycle equilibrium, assuming nature's absorption capacities remained the same, we would have to cut back to about 25 $GtCO_2e$ per year, which is deemed politically and economically unacceptable. The politically accepted target is a 2°C increase by 2100, requiring a reduction to around 44 $GtCO_2e$ by 2020. The business-as-usual scenario is an increase to about 56 $GtCO_2e$ by 2020. Oceans absorb atmospheric CO_2 (about 25% of it today) and will continue absorbing human-generated CO_2 for decades if not centuries, which increases acidity, affecting coral reefs and other sea life. Over the long term, increased CO_2 in the atmosphere leads to a proliferation of microbes that emit hydrogen sulfide—a very poisonous gas.

If all Annex I pledges were fully implemented, Annex I emissions would reach a level by 2020 that is 12–18% below the level of 1990; however, if only their unconditional pledges were implemented, the decrease would only be 5% below the 1990 level. There is also a growing fear that the target of not acceding 450 ppm of atmospheric CO_2 is inadequate and should be lowered to 350 ppm, or else the momentum of climate change could grow beyond humanity's ability to reverse it. Emissions from increased production of internationally traded products have more than offset the emissions reductions achieved under the Kyoto Protocol. The volume of the carbon market grew 11% in 2011, reaching $176 billion. The voluntary carbon market grew 33% in value in 2011, to $576 million, but volumes decreased by 28%.

Global ecosystem services that provide life support and economic foundations are valued at $16–64 trillion. These are being depleted faster than nature can resupply. Human activity dominates 43% of Earth's ice-free land surface and affects twice that area. In just 18 years (by 2030) demographers expect an additional 3 billion middle-class consumers drawing even more on these ecosystem services. In 2013, Earth Overshoot Day - the approximate date human resource consumptions exceed nature's budget - fell on August 20, two days earlier than 2012. Since 2001, Earth Overshoot Day has moved ahead on average 3 days per year. Unless we improve our economic, environmental, and social behaviors, the next 100 years could be disastrous. The Wealth Accounting and Valuation of Ecosystem Services, a global partnership, is developing guidelines for ecosystem accounting and their integration into national policy analysis.

The Group on Earth Observations Biodiversity Observation Network – GEO BON – was set to organize and improve biodiversity observations globally and make the outcomes more readily accessible to policymakers, experts, and other users.

Poorer countries that contribute the least to GHGs are the most vulnerable to climate change's impacts because they depend on agriculture and fisheries, and they lack financial and technological resources to cope. G8 leaders in L'Aquila pledged $20 billion in 2009 to boost food security, yet only 22% of these funds have been committed. The Global Landscape of Climate Finance 2012 identifies global climate finance flows of $364 billion in 2011. According to UNEP's *Towards a Green Economy* report, investing 2% of global GDP ($1.3 trillion per year) into 10 key sectors can kick-start a transition toward a low-carbon, resource-efficient green economy that would increase income per capita and reduce ecological footprint by nearly 50% by 2050 compared with business as usual. Meanwhile, the world spends 1-2% of global GDP on subsidies that often lead to unsustainable resource use.

Climate change could be accelerated by dangerous feedbacks: melting ice/snow on tundras reflect less light and absorb more heat, releasing more methane, which in turn increases global warming and melts more tundra; warming ocean water releases methane hydrates from the seabed to the air, warming the atmosphere and melting more ice, which further warms the water to release more methane hydrates; the use of methane hydrates or otherwise disturbing deeper seabeds releases more methane to the atmosphere and accelerates global warming; Antarctic melting reflects less light, absorbs more heat, and increases melting; and the Greenland ice sheet (with 20% of the world's ice) could eventually slide into the ocean.

Glaciers are melting, polar ice caps are thinning, and coral reefs are dying. Some 30% of fish stocks have already collapsed, and 21% of mammal species and 70% of plants are under threat. Oceans absorb 30 million tons of CO2 each day, increasing their acidity. The number of dead zones—areas with too little oxygen to support life—has doubled every decade since the 1960s.

It is time for a U.S.–China Apollo-like 10-year goal and global R&D strategy to address climate change, focusing on new technologies like electric cars, saltwater agriculture, carbon capture and reuse, solar power satellites, maglev trains, urban systems ecology, pure meat without growing animals, and a global climate change collective

intelligence to support better decisions and keep track of it all. It is estimated that growing pure meat without growing animals would generate 96% lower GHG emissions, use 45% less energy, reduce land use by 99%, and cut water use by 96% compared with growing animals for meat. These technologies have to be supplemented by policies that support carbon taxes, cap and trade schemes, reduced deforestation, industrial efficiencies, cogeneration, conservation, recycling, and a switch of government subsidies from fossil fuels to renewable energy.

Towards a Green Economy report, investing 2% of global GDP ($1.3 trillion per year) into 10 key sectors can kick-start a transition toward a low-carbon, resource-efficient green economy that would increase income per capita and reduce the ecological footprint by nearly 50% by 2050 compared with business as usual. Meanwhile, the world spends 1–2% of global GDP on subsidies that often lead to unsustainable resource use. *The amount of global wealth exposed to natural disasters risk has nearly tripled from $525.7 billion 40 years ago to $1.58 trillion. The world's economic losses due to natural disasters in 2011 reached $270 billion. Large reinsurance companies estimate the annual economic loss due to climate change could reach $300 billion per year within a decade. Meanwhile, 3,000 corporations cause $2.15 trillion in environmental damage every year; only six countries have a GDP greater than $2.15 trillion.*

Scientists are studying how to create sunshades in space, build towers to suck CO_2 from the air, sequester CO_2 underground, spread iron powder in oceans to increase phytoplankton, and reuse carbon at power plants to produce cement and grow algae for biofuels. Large-scale geoengineering, such as spraying aerosols into the atmosphere to reduce sunlight, could have unintended and irreversible side effects, such as making the daytime sky significantly brighter and whiter. Other suggestions include retrofitting coal plants to burn leaner and to capture and reuse carbon emissions, raising fuel efficiency standards, and increasing vegetarianism (the livestock sector emits more GHGs than transportation does). Others have suggested new taxes, such as on carbon, international financial transactions, urban congestion, international travel, and environmental footprints. Such taxes could support international public/private funding mechanisms for high-impact technologies. Massive public educational efforts via popular film, television, music, games, and contests should stress what we can do.

Without a global strategy to address climate change, the environmental movement may turn on the fossil fuel industries. The legal foundations are being laid to sue for damages caused by GHGs. Climate change adaptation and mitigation policies should be integrated into an overall sustainable development strategy. Without sustainable growth, billions more people will be condemned to poverty, and much of civilization could collapse, which is unnecessary since we know enough already to tackle climate change while increasing economic growth. Challenge 1 will be addressed seriously when green GDP increases while poverty and global GHG emissions decrease for five years in a row.

The 17 sustainable development goals (SDGs) to transform our world:

GOAL 1: No Poverty
GOAL 2: Zero Hunger
GOAL 3: Good Health and Well-being
GOAL 4: Quality Education
GOAL 5: Gender Equality
GOAL 6: Clean Water and Sanitation
GOAL 7: Affordable and Clean Energy
GOAL 8: Decent Work and Economic Growth
GOAL 9: Industry, Innovation and Infrastructure
GOAL 10: Reduced Inequality
GOAL 11: Sustainable Cities and Communities
GOAL 12: Responsible Consumption and Production
GOAL 13: Climate Action
GOAL 14: Life Below Water
GOAL 15: Life on Land
GOAL 16: Peace and Justice Strong Institutions
GOAL 17: Partnerships to achieve the Goal

The 17 Sustainable Development Goals

1. End poverty in all its forms everywhere
2. End hunger, achieve food security and improved nutrition, and promote sustainable agriculture
3. Ensure healthy lives and promote well-being for all at all ages
4. Ensure inclusive and equitable quality education and promote life-long learning opportunities for all
5. Achieve gender equality and empower all women and girls
6. Ensure availability and sustainable management of water and sanitation for all
7. Ensure access to affordable, reliable, sustainable, and modern energy for all
8. Promote sustained, inclusive and sustainable economic growth, full and productive employment and decent work for all
9. Build resilient infrastructure, promote inclusive and sustainable industrialization and foster innovation
10. Reduce inequality within and among countries
11. Make cities and human settlements inclusive, safe, resilient and sustainable
12. Ensure sustainable consumption and production patterns
13. Take urgent action to combat climate change and its impacts (in line with the United Nations Framework Convention on Climate Change)
14. Conserve and sustainably use the oceans, seas and marine resources for sustainable development
15. Protect, restore and promote sustainable use of terrestrial ecosystems, sustainably manage forests, combat desertification, and halt and reverse land degradation and halt biodiversity loss
16. Promote peaceful and inclusive societies for sustainable development, provide access to justice for all and build effective, accountable and inclusive institutions at all levels
17. Strengthen the means of implementation and revitalize the global partnership for sustainable development

Dateof Publication 2nd & 17th of every Month, Date of posting 3rd and 18th of every month
आर्य जीवन 03-12-2017 Registe ed-Reg. No. HD/783/2015-17 RNI No. 52990/93

ఆర్య జీవన్
హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక
Editor: **Vithal Rao**, M.Sc. LL.B., Sahityaratna
Arya Prathinidhi Sabha AP-Telangana, Sultan Bazar, Hyderabad-95.
Phone No. 040-24753827, 66758707, Fax : 040-24557946
Request to donate Rs. 250/- సంపాదకులు -విఠల్ రావు, మంత్రి సభ

To,

'विश्व वेद सम्मेलन' का भव्य आयोजन

स्थान : इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, 1–जनपथ, नई दिल्ली

दिनांक : 15, 16, व 17 दिसम्बर

आपको जानकर अति प्रसन्नता होगी कि दिनांक 15 से 17 दिसम्बर, 2017 तक इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, 1, जनपथ, इंडिया गेट के पास, नई दिल्ली में 'विश्व वेद सम्मेलन' का भव्य आयोजन किया जा रहा है। इस सममेलन में भारत व विश्व के अनेक देशों से अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त वैदिक विद्वान् भाग लेंगे व विश्व के समक्ष विद्यमान वर्तमान चुनौतियों जैसे गरीबी, बीमारी, अशिक्षा, जलवायु परिवर्तन, मानव अधिकारों की रक्षा आदि के संदर्भ में वेदों की प्रासंगिकता के विषय में विचार–विमर्श कर एक वैदिक घोषणा पत्र जारी करेंगे। विश्व वेद सम्मेलन के कार्यक्रम में आप सादर आमंत्रित हैं।

सम्मेलन की विशेषताएँ

1. भारत के उपराष्ट्रपति माननीय श्री वेंकैया नायडु इस सम्मेलन का शुभारम्भ करेंगे।
2. मुस्लिम कन्याएँ पर्यावरण की शुद्धि हेतु वैदिक ऋचाओं के माध्यम से प्रतिदिन वैदिक यज्ञ का संचालन करेंगी।
3. देश–विदेश के उच्च कोटि के वैदिक विद्वान्, शिक्षाशास्त्री एवं वैज्ञानिक इसमें भाग लेंगे।
4. इस अवसर पर ऐसे 100 दम्पत्ति युगलों का, जिन्होंने वेदों के अनुसार जाति व्यवस्था के बन्धन को तोड़कर अन्तर्जातीय विवाह किया है, उन्हें सम्मानित किया जायेगा।
5. मांसाहार के बढ़ते प्रचलन को रोकने के लिये 20 होटल संचालकों को, जो केवल शाकाहारी भोजन कराते हैं, उन्हें पुरस्कृत किया जायेगा।
6. वेदों की सार्वभौमिकता के अनुसार और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना के अनुसार 'एक विश्व संसद, विश्व नागरिकता तथा पृथ्वी संविधान' का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाएगा।

आइये! इस नवीन इतिहास की संरचना के हम सब साक्षी बनें। अधिक से अधिक संख्या में पधारें।

वेद सम्मेलन के कार्यालय के फोन नम्बर–011–23363221, 23367946, ई–मेल : vishwaved2017@gmail.com वैबसाइट : vaidicworld.org से पंजीयन हेतु आवश्यक सूचना प्राप्त की जा सकती है।

स्वामी अग्निवेश अध्यक्ष

आनन्द कुमार, IPS (Rtd.) संयोजक

प्रदाता परमात्मा को मानते है वे ही लोग इसके पतन के कारण बनेंगे । सम्मेलन में पर्यावरण की शुद्धी हेतु वैज्ञानिक अनुसन्धनात्मक विवेचन होना चाहिए । इसी प्रकार माँसाहार की बढ़ती प्रवृत्ति जहाँ एक ओर हिंसात्मक मनोवृति को जन्म दे रही है वहीं पर्यावरण में असन्तुलन पैदा कर रही है इसीलिए इस पर भी वैज्ञानिक विवेचन वेद पर आधारित हो और भी कई विषय हैं उन सभी पर वेद क्या विकल्प देता है और व भी सार्वभौमिक विकल्प क्या हो तथा उसमें मानव की जीवन शैली क्या हो तथा सरकारों की व्यवस्था किस प्रकार की योजनाओं को तयार करें और लागू करें इस पर खुलकर विवेचना होना चाहिए । इन सब बातों पर खुल कर के चर्चा करने के लिए जो स्वयं को वेद का विद्वान मानते है उनको आगे आना चाहिए वरना भविष्य में वे महानुभाव ही वेद को सीमित करने के उत्तर दायी माने जाएंगे ।

THE VIEWS & THE NEWS PUBLISHED IN THIS ISSUE MAY NOT NECESSARILY BE AGREEABLE TO THE EDITOR
Editor : Vithal Rao Arya • Email : acharyavithal@gmail.com, Mobile : 09849560691

సంపాదకులు : శ్రీ విఠల్‌రావు మంత్రి సభ, ఆర్యప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర.-తెలంగాణ, సుల్తాన్‌బజార్, హైదరాబాద్-95. Ph: 040-24753827, Email : acharyavithal@gmail.com
संपादक : श्री विट्ठलराव मंत्री सभा ने सभा की ओर से समता पॉवर प्रिन्टर्स में मुद्रित करवा कर प्रकाशित किया ।
प्रकाशकः आर्य प्रतिनिधि सभा आं.प्र.-तेलंगाना, सुल्तान बाज़ार, हैदराबाद तेलंगाना-95.